मयूर-प्रकाशन
झांसी

धरती विहंसी

प्रकाश सक्सेना

धरती विहँसी

(कहानी-संग्रह)

प्रकाश सक्सेना

मयूर प्रकाशन, झांसी

प्रकाशक

सत्यदेव वर्मा,

बी. ए. एल-एल. बी.

प्रथमावृत्ति १९५८

मूल्य दो रुपया

मुद्रक

स्वाधीन प्रेस, झांसी।

संकेत

अपने प्रथम कहानी संग्रह को बिना किसी भूमिका के प्रकाशित करने का मेरा इरादा था। पाठकों और आलोचकों के ऊपर पहले से ही कोई बोझिल सम्मति लाद देना मैं अनुचित मानता हूँ। परन्तु फिर विचार हुआ कि यदि प्रकाशित कहानियों के विषय में बिना किसी आलोचना के उनकी पृष्ठभूमि और उनके पीछे काम कर रही मान्यताओं एवं प्रभावों का संकेत दे दिया जाये तो सम्भवतः पाठकों को अधिक रस प्राप्त हो सके।

साहित्य को सदैव शुभ होना चाहिये—ऐसी मेरी मान्यता रही है। इसके लिये यह आवश्यक नहीं है कि साहित्यकार यथार्थ और वास्तविकता से कतराये। घृणित से घृणित विषय वस्तु का यथार्थवादी चित्रण करते हुए भी लेखक साहित्य के शुभ उद्देश्य को अक्षुण्य रख सकता है, स्वयं को तटस्थ रख सकता है। इसके अनेक उदाहरण विश्व साहित्य से गिनाये जा सकते हैं। परन्तु मानव की निम्न भावनाओं को उभाड़ने वाले सस्ते और छिछले साहित्य को जिसका प्रचार इधर बहुत बढ़ा है कभी शुभ नहीं कहा जा सकता। लिखते समय साहित्य की यह मान्यता मेरे सदा सामने रही है।

इसी प्रकार अस्वस्थ और विकृत सिनेमाई प्रेम के भी मुझे वास्तविक जीवन में कभी दर्शन नहीं हुये। मेरा तो मत है कि कभी कभी जो प्रेम में जहर खा लेने, रेल से कट जाने आदि की घटनायें अखबारों में पढ़ने में आ जाती हैं उनका कारण अधिकतर यह सस्ता और वासनाओं को चहकाने वाला निम्न श्रेणी के कथा साहित्य की अधकचरे मन पर प्रतिक्रिया ही है। कुछ उपन्यासों और कहानियों को पढ़कर तो लगता है

जैसे कथाकार ने फ्रायड के मनोविज्ञान की मानव असंगतियों को मूर्तरूप देने के लिये उदाहरण गढ़े हों। प्रेम यदि जीवन को अधिक स्वस्थ न बना सका, जीवन संघर्ष में अड़ने की और विपत्तियों से जूझने की प्रेरणा न दे सका तो प्रेम ही क्या। मेरी कहानियों में इस प्रकार का विकार ग्रस्त प्रेम नहीं मिलेगा। मेरे एक साहित्यिक मित्र ने तो कहा था कि तुम्हारी 'अजय शिखर' की नायिका यदि किसी असंतुलित कहानी लेखक के पल्ले पड़ जाती तो या तो किसी पड़ोसी से प्रेम करने लगती या जहर खाकर मर लेती। परन्तु घोर विषम परिस्थितियों में भी वह जूझती रहती है यह उसका स्वस्थ मानसिक दृष्टिकोण है।

जिन मित्रों की सहायता से यह संग्रह प्रकाशित हो रहा है उनको धन्यवाद की सूखी इलायची देकर मैं उनके आभार को हल्का नहीं करना चाहता।

कार्तिकी पूर्णिमा
२०१४ — प्रकाश सक्सेना

अनुक्रमणिका

धरती बिहँसी

अलाव की आंच मंदी मंदी सुलग रही थी—अलाव, जो भारतीय गांव की दरिद्रता का सूचक है, जो इस बात का प्रमाण है कि गांव वालों के पास जाड़ों में पहिनने के लिये पर्याप्त कपड़े नहीं हैं, और जिसकी मंदी आंच के समान ही गांववासियों के शरीर की अग्नि मंद हो चुकी है, और जहां तनिक-तनिक सी चिनगारियों और अंगारों के चारों ओर व्यर्थ राख का अंबार लगा हुआ है, परन्तु साथ ही जो इस आशा का केन्द्र है कि आँच अभी बुझी नहीं है, और तनिक तनिक सी चिनगारियां अनुकूल वातावरण पाने पर पुनः एक शक्तिशाली ज्वाला का रूप धारण कर सकती हैं, जिसमें अभाव और दूषित संस्कारों की होली भी जल सकती है। अलाव, जो किसी काल में भारतीय जन जीवन की सामूहिकता और सामाजिकता का प्रतीक रहा होगा, और जो कालान्तर में बिगड़ते बिगड़ते अब जातीय संकीर्णता का कलंक मात्र बन गया है।

अलाव, जिसके चारों ओर बैठ कर गांव की बहू बेटियों की निराधार निन्दाओं के पर साफ करके उन्हें गाँव के स्वच्छ वायुमण्डल को दूषित करने के लिये ऊँचा उड़ाया जाता है। जहां किसी की बढ़ती हुई अटारी को धराशायी करने के षड़यन्त्र रचे जाते हैं। अलाव, जो इसका प्रतीक है कि गांव में काफी अवकाश है, परन्तु जो विषधर के समान कुण्डली मारे गांव की छाती पर इस निश्चय से बैठा हुआ है कि इस अवकाश का उपयोग किसी रचनात्मक कार्य में न होकर केवल चिलम फूंकने में ही होगा। अलाव, जो गांव

वालों को मन्द मन्द अग्नि प्रदान करके मरने भी नहीं देता, लेकिन जो उनमें जीवन का पूर्ण आवेग भी नहीं आने देता, उन्हें जीवित मुरदा रखता है। परन्तु आज अलाव के चारों ओर बातों का दूसरा ही प्रकरण था।

मुखिया रामधन का कहना था कि गांव पञ्चायतों की स्थापना से गांव को कोई लाभ नहीं हुआ, उलटे आपसी वैर-भाव और झगड़े बढ़ गये हैं। ब्याज में पंचायत का टैक्स और देना पड़ता है।

हरीसिंह नम्बरदार ने भी कुछ आगे खिसककर समर्थन किया, 'कुछ काम तो पंचायतों ने इन दो वरसों में किया नहीं बस, जब देखो तब टैक्स और चन्दा लेने को ही खड़े रहते हैं।'

गाँव पंचायत का सेक्रेटरी बिहारीलाल भी वहीं बैठा था। उसने यह कहना तो ठीक नहीं समझा कि पंचायतों की संस्थापना से मुखिया रामधन की वह आमदनी जो उसे गांव के झगड़ों में पुलिस की दलाली कर के होती थी, बन्द हो गई है, केवल तोते की तरह रटीरटाई बात ही कही, 'पंचायत से गांव में रामराज्य आयगा। अभी तो शुरूआत है। हर गांव अब एक स्वतन्त्र इकाई हो गया है। रुपया होने पर गांव पंचायत गांव के लाभ के लिये चाहे जो काम कर सकती है।'

बिहारीलाल की बात का उपस्थित लोगों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। चन्दू बनिये ने, जिसकी पंचायत का टैक्स न देने पर कुर्की हुई थी, एक मुट्ठी पत्ती अलाव में डालते हुये कहा, 'अरे भैया, न होगा नौ मन तेल न राधा नाचेगी। टैक्स तो सारा सेक्रेटरी साहब की तनख्वाह देने में हो निकल जाता है। काम कहां से हो ?'

क्योंकि आक्रमण व्यक्तिगत था इसलिये बिहारीलाल तिलमिला गया। लेकिन वातावरण अपने विरुद्ध देखकर बड़े संयत स्वर में बोला, 'बड़ा भारी टैक्स दे देते हो न! रो रो कर तो टैक्स देते हो। आज अगर सारा टैक्स वसूल हो जाय तो कल ही गांव भर में पक्की नालियां बनवा दूं। भाई टैक्स न दो तो कम से कम महीने में एक दिन गांव के लिये मुफ्त काम ही करो।'

बिहारीलाल पहले गांव का अकेला कांग्रेसी कार्यकर्त्ता था। पंचायत स्थापित होने पर वह गांव पंचायत का सेक्रेटरी हो गया। इसी को लक्ष्य करते हुये रामधन ने चोट की, 'अरे भाई, इन की बातों में क्या लोगे? पहले ऐसे ही बहका-बहका कर लोगों को जेल भिजवा दिया। अब जब इनकी सरकार आई तो इनकी भी पेनशन बंध गई। तनख्वाह क्यों कहते हो पेनशन कहो। घाटे में रहे गांव वाले जो टैक्स भरे जायें।'

सामूहिक आक्रमण के सामने बिहारीलाल ने बैठना उचित नहीं समझा और वह खिन्न मन उठ कर चल दिया। उसे जाते देख बूढ़े नम्बरदार हरीसिंह ने कहा, 'अरे बिहारी बैठो भी। अलाव की बात का क्या बुरा मानना।'

लेकिन बिहारी बैठा नहीं। अपने घर की तरफ़ चला ही गया।

चन्दू ने फिर चुटकी ली, 'भैया, बेकार नाराज़ कर दिया। कहीं जाकर दस पांच का कुर्की वारन्ट न निकलवा दे।'

रात बहुत बीत गई थी। इसलिये चिलम की एक एक फूंक मार कर सब लोग उठ पड़े।

बिहारी को अलाव की बात लग गई थी। वह सीधा सच्चा युवक था। जिस काम में उसे विश्वास हो जाय उसे

करने में वह जान लगा देता था। कुण्डा गांव में आज़ादी का नाम लेने वाला वह पहला आदमी था और इसके लिये वह दो बार जेल भी जा चुका था। कुण्डा गांव ज़िले के आख़िरी कोने में दो तरफ़ यमुना नदी से और एक ओर एक नाले से घिरा हुआ स्थित है। गांव के पास ही एक आधे मील घेरे का कच्चा तालाब और दलदल है, जो बरसात के दिनों में गांव की लगभग सारी खेती योग्य भूमि में फैल जाता है। गांव की आबादी कुछ ऊँचे पर है, जो बची रहती है।

अन्य साधन न होने कारण कुण्डा को लोग चोरों और डाकुओं का गांव कहते से आये हैं। यहां के अधिकांश ठाकुर किसी समय में हल की मूँठ से हाथ लगाना अपमानजनक समझते थे और नाजायज हथियारों के द्वारा यमुना के उस पार के गांवों में चोरी और डकैती डालना अपनी वीरता समझते थे। सिर्फ रबी की ही थोड़ी बहुत फसल यहां होती है, और इस गांव के लोग अन्य गांव वालों की अपेक्षा अधिक गरीब भी हैं।

बिहारीलाल को बात तो लग गई थी, लेकिन वह करे क्या—यह उसकी समझ में नहीं आता था, वह सोचता था कि यह सही है कि दो साल में पंचायत ने कहने योग्य कोई काम नहीं किया है, लेकिन बिना धन के कोई काम हो भी कैसे सकता है? गाँव में जो चार छः खाते-पीते लोग हैं उन्होंने तो पंचायत का बहिष्कार सा ही कर दिया था, जिस के कारण गाँव पंचायत में अधिकतर निर्धन काश्तकार या भूमिहीन मज़दूर ही पंच हैं, उनके पास न साधन हैं और न बुद्धि, लेकिन कुछ करना ही होगा, नहीं तो लोगों के मुंह बंद कैसे होंगे? इसी उधेड़बुन में बिहारीलाल कई दिन गाँव में किसी से नहीं बोला, लेकिन उसे कोई राह भी नहीं दिखाई दी।

एक दिन सोचने से उकता कर वह तालाब के किनारे निकल आया, शाम हो चुकी थी, तालाब की काली जलराशि हवा से आन्दोलित होकर लहरें ले रही थी मानो कोई राक्षसी कह रही हो कि मैं तुम्हें पनपने नहीं दूंगी। बिहारी-लाल ने देखा कि हरखू तालाब के किनारे पानी में कुछ ढूँढ़ रहा है, निकट जाकर उसने पूछा, 'क्या ढूँढ़ रहे हो, कक्का ?'

'कुछ नहीं भैया, यहीं कहीं सन गाड़ गया था, सो मिल नहीं रहा है, कोई निकाल न ले गया हो।' हरखू ने सीधे खड़े होते हुये उत्तर दिया।

'कक्का, सन गाड़ने से तो पानी में बड़ी बदबू हो जाती है। इसी पानी को तो सारे गांव के ढोर पीते हैं।' बिहारी ने बात जारी रखते हुये कहा। उसका मन किसी से बात करने को हो रहा था।

'सो तो है। लेकिन यह कौन नई बात है ?' हरखू ने उत्तर दिया।

बात पलटते हुए बिहारी ने पूछा, 'कक्का, तुम तो बड़े-बूढ़े हो। यह ताल क्या तुम्हारे जमाने में भी ऐसा ही था ?'

अपने को महत्वपूर्ण समझते हुए हरखू ने बड़ी तत्परता से उत्तर दिया, 'और नहीं तो क्या ? इसका क्या बिगड़े है। जितनी मिट्टी गांव के घर बनाने को इसमें से जाती है, उतनी ही बरसात में बहकर फिर आ जाती है। सारे गांव का मान मार रखा है इस तालाब ने। नहीं तो ऐसी धरती के जोतने वाले कहीं भूखों मरते हैं ? वैसे तो गांव में आता ही कौन है। लेकिन एक बार एक जंट साहब आये थे सफेद घोड़े पर, अंग्रेज थे। उन्होंने कहा था कि अगर यह तालाब नाले से मिला दिया जाय तो गांव की धरती बच सकती है। लेकिन इसे तीस बरस से ऊपर हो गये। तब तो मैं तुम से भी...'

बिहारी ने आगे की और बात नहीं सुनी। उसे लगा जैसे उसके धुंधले मस्तिष्क में प्रकाश भर गया हो, जैसे उसे बहुत दिनों की खोई मणि मिल गई हो, जैसे उसे ज्ञान प्राप्त हो गया हो—वैसा ही जैसा किसी समय में भगवान बुद्ध को बोधि वृक्ष के नीचे प्राप्त हुआ था। वह दौड़ा दौड़ा घर वापस आया और सोचने लगा कि अगर यह तालाब सुखा दिया जाय, तो गांव की कायापलट हो सकती है। वह मन ही मन मनसूबे बांधने लगा कि कल इस प्रस्ताव को गांव पंचायत की सभा के सामने रखेगा, और अगर गांव के तीस युवक भी बिना मजदूरी लिये खुदाई करने को तैयार हो जायें तो नाला बिना अधिक खर्च के खुद सकता है। बाद में उनको तालाब की जमीन बांटी जा सकती है। लेकिन किस स्थान से कितनी गहराई तक खुदाई की जाय यह तो कोई जानकार ही बता सकेगा। तो फिर शहर जाना ही पड़ेगा। कोई न कोई तो इतनी सहायता कर ही देगा। अपनी योजना के सपने देखता देखता बिहारी उस रात सोया।

अगले दिन पंचायत की सभा में उसने जब एक छोटा नाला खोदकर तालाब का पानी बड़े नाले में गिराकर दलदल सुखाकर जमीन पर खेती करने का प्रस्ताव रखा तो बहुत से लोग ठहाका मारकर हँस पड़े। जो तालाब सदियों से गांव का मानमर्दन कर रहा है, वह ऐसी आसानी से गांव वालों के बूते कैसे सूख जायगा। मुफ्त में मेहनत करने को भला कौन राजी होगा। लेकिन जब तालाब की जमीन को मेहनत करने वालों में बांटने का सुझाव आया तो भूमिहीन मजदूरों में कुछ लालच और उत्साह जाग्रत हुआ।

एक पञ्च ने आपत्ति की कि तालाब सूखने पर ढोरों को बड़ी दिक्कत हो जायगी। लेकिन बिहारी के यह कहने पर कि हर कुएँ पर सीमेंट के पक्के हौज जानवरों के पानी पीने

के लिये बनवा दिये जायेंगे, जिससे जानवर बीमारी से भी बचे रहेंगे, तो वह चुप हो गया। बड़े विचार और विवाद के बाद प्रस्ताव तो पास हो गया, लेकिन बिहारी को छोड़कर किसी के हृदय में भी यह विश्वास नहीं था कि योजना बिहारी के कथनानुसार पूरी हो सकेगी। रामधन व चन्दू ने तो गांव में बड़ी खिल्ली उड़ाई कि कलियुग में एक रामचन्द्र पैदा हुए हैं जो समुद्र सुखायेंगे। लेकिन बिहारी को अपनी लगन के सामने यह सब सुनने का समय नहीं था। वह नाला खोदने को प्रस्तुत युवकों की सूची तैयार कर रहा था।

डिस्ट्रिक्ट इन्जीनियर कौशल साहब के बंगले के चक्कर काटते हुए बिहारीलाल को पूरे सात दिन हो गये थे, परन्तु इन्जीनियर साहब से उसकी भेंट न हो सकी थी। आज दौरे पर हैं, तो कल मीटिंग में हैं, और अगले दिन काम अधिक है आदि नित्य ही कोई न कोई बाधा उपस्थित हो जाती थी। गांव में नाक नीची होने के भय ने बिहारीलाल को असाधारण सहिष्णु बना दिया था। अन्यथा इतनी निराशा के बाद तो वह इन्जीनियर साहब की कोठी की तरफ कभी मुँह भी न करता। लेकिन वह सोचता था कि सरकारी अफसरों की अपेक्षा तो शायद भगवान का पाना अधिक सरल है। आजादी मिलने के बाद भी इन लोगों के ढर्रे में कोई अन्तर नहीं आया।

अन्त में एक दिन सुबह कौशल साहब से उसकी भेंट हुई। वह अपने घर के दफ्तर में बैठे थे। बिहारी के अन्दर घुसते ही बोले, 'भाई, माफ करना। तुमको कई दिन से परेशान होना पड़ रहा है। लेकिन क्या करूँ, मैं अधिक आवश्यक कामों में फँसा रहा, बैठिये। कहिये, क्या काम है ?'

कौशल साहब की क्षमायाचना से बिहारी का सारा विषाद धुल गया। मेज पर लगे फाइलों के अम्बार में बैठे हुए इस व्यक्ति पर उसे वास्तव में दया आ गई। कुरसी पर बैठते हुए

उसने कहा, 'मैं कुण्डा गांव की पञ्चायत का सेक्रेटरी हूँ। एक विशेष योजना के सिलसिले में आपकी सम्मति लेने आया हूँ। यदि समय हो तो कहूँ।'

कौशल साहब की स्वीकृति पाकर बिहारी ने उत्साहित होकर विस्तार से अपने नाले की सारी योजना समझाई और अन्त में कहा, 'हम आप से केवल एक विशेषज्ञ के नाते आप की सम्मति और देखरेख की कृपा चाहते हैं। कष्ट तो आप को होगा ही।'

कौशल साहब ने गम्भीर होकर उत्तर दिया, 'नहीं, कष्ट तो कुछ नहीं। मुझे आप का उत्साह देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई। अभी तो आप के बताये अनुसार योजना अच्छी ही मालूम देती है। अन्न की पैदावार भी बढ़ जायगी। लेकिन योजना पर पक्की राय देने से पहले मुझे उस क्षेत्र को देखना होगा कि किधर ढाल है, किधर ऊँचाई है, कितना पानी कितने समय में निकालना होगा—तभी ठिकाने की राय दे सकूँगा। मैं अपने ओवरसीयर को इस काम के लिये एक हफ्ते में गांव भेजूँगा।' कहते हुए उन्होंने अपनी डायरी में गांव व बिहारी का नाम लिख लिया।

'इन्जीनियर साहब, मेरा इरादा है कि बरसात के पहले पहले ही यह काम कर लूँ, अन्यथा फिर छः सात महीने की बात टल जायेगी', बिहारी ने आतुरता प्रदर्शित करते हुए कहा।

कौशल साहब हँसकर बोले, 'जरूर, जरूर। लेकिन मुझे शक है कि गांव वालों से आपको इतना सहयोग मिल जायगा जैसा कि आपने अनुमान लगाया है। खैर, आपका उत्साह आपकी सहायता करेगा। मैं सम्बन्धित खरचे का भी अनुमान बनवा लूंगा।'

बिहारी इन्जीनियर साहब को अनेक धन्यवाद देकर बिदा हुआ, गांव को लौटते हुये उसने कुछ फावड़े और कुदाल भी खरीद लिये, यह सोचकर कि नाला खुद जाने के बाद भी उनका उपयोग पंचायत गाँव के रास्ते आदि ठीक कराने में कर सकती है।

परन्तु जब एक हफ्ते के स्थान पर दो हफ्ते बीत गये और गांव में ओवरसीयर नहीं आया, तो बिहारी की चिंता बढ़ गई और उसने पुनः शहर की राह पकड़ी।

कौशल साहब ने उसे देखते ही पहिचान लिया और उसके कुछ कहने के पहले ही बोले, 'भाई, इधर बड़े साहब के आ जाने की वजह से ओवरसीयर को नहीं भेज सका, मैं स्वयं लज्जित हूँ, लेकिन आप चिंता न करें, इस बार मैं स्वयं ओवरसीयर के साथ आऊँगा और अपने सामने ही सब काम कराऊँगा, आपको शायद विश्वास नहीं हो रहा है, अच्छा, तो लीजिये आप तारीख भी ले जाइये, इसी महीने की बारह तारीख को मैं आऊँगा। आपको फिर आने की आवश्यकता नहीं होगी। सिर्फ चार ही दिन की बात है, आप अभी से मन छोटा न करें, नहीं तो फिर काम कैसे हो सकेगा?'

कुंडा ग्रामवासियों को वास्तव में आश्चर्य हुआ जब उन्होंने बारह तारीख को कई साहबों को तालाब के आस-पास की भूमि का निरीक्षण और नाप-तौल करते देखा, बिहारी की योजना में उन्हें कुछ कुछ विश्वास होने लगा, इन्जीनियर साहब ने जांच पड़ताल के बाद बिहारी को बताया। 'नाला तालाब के दक्षिण-पूर्वी कोने से खोदा जाना चाहिये, क्योंकि उधर ही तालाब का सबसे अधिक ढाल है और उधर से नाला ले जाने में कोई खेती योग्य जमीन भी नहीं पड़ती, जिससे किसी की हानि हो, नाला करीब पौन मील लम्बा खोदना पड़ेगा और उसकी चौड़ाई भी छः गज से

आठ गज के बीच होनी चाहिये। अगर तीस चालीस लोग नित्य काम करें तो नाला लगभग दो माह में तैयार हो जायगा और खरचा बीस पच्चीस हज़ार रुपये के क़रीब बैठेगा, लेकिन जैसी आपकी योजना है कि गांव वाले मुफ्त खुदाई करेंगे तो कुल सौ रुपयों में ही काम चल जायगा।'

बिहारी को यह सुनकर कि योजना सफल हो सकती है अतीव प्रसन्नता हुई। इंजीनियर साहब को बिदा करते समय उसने कहा, 'चैत की नवदुर्गा में देवी की पूजा कर के खुदाई की मुहूर्त्त करना चाहते हैं, तब तक लोग फसल भी काट लेते हैं और गर्मियों में गांव वालों के हाथ भी खाली रहते हैं। आपने योजना को वास्तविक आकार दिया है, इसलिये मेरी विनती है कि आप ही के हाथों मुहूर्त्त भी हो।'

इञ्जीनियर साहब ने प्रसन्न होकर उत्तर दिया, 'मुझे तो कोई एतराज नहीं, आपकी लगन की सराहना किये बिना मैं नहीं रह सकता। वैसे मैं अपने ओवरसीयर को दूसरे-तीसरे दिन खुदाई का काम देखने-भालने के लिये भेजता रहूँगा।'

गांव वालों के दिलों में योजना के प्रति जो संदेह था वह मिट गया, और भूमिहीन मज़दूरों में तो अपने अपने नाम मुफ्त खुदाई करने वालों में लिखाने के लिये होड़-सी लग गई, उन्हें स्पष्ट दीखने लगा कि उनके दिन भी अब फिरने वाले हैं और कुछ दिनों में ही उनकी अपनी धरती होगी जिस पर वे मनचाही खेती कर सकेंगे। उस दिन बिहारी की सूची में युवकों की संख्या पचहत्तर तक जा पहुँची। इन बीच के दिनों में बिहारी ने गांव में योजना का खूब प्रचार किया और प्रत्येक गाँव वाले को अपनी योजना का महत्व और उसके पूर्ण होने पर गाँव के उन्नत होने की रूपरेखा विस्तार से बताई। शहर से और अधिक फावड़े और कुदाल मंगाये गये और डलियां गांव से ही एकत्रं की गईं।

मुहूर्त्त के दिन गांव में उत्साह का ठिकाना नहीं था, ऐसा लगता था जैसे कहीं का मेला लगने वाला हो। सब लोगों ने देवी की पूजा की और जिन साठ खोदने वालों को आज काम आरम्भ करना था, उनके मस्तकों पर लाल तिलक किए गये और गले में फूलों के हार डाले गए। सबको ऐसा लग रहा था जैसे किसी बड़े पवित्र काम में वे बलि देने जा रहे हों। पंचायत के रजिस्टर में उन सब के नाम लिखे गए, जिससे बाद में यह हिसाब लगाने में दिक्कत न हो कि किस व्यक्ति ने कितना श्रम किया। शंखों और घड़ियालों की घनघोर ध्वनि के बीच खुदाई का कार्य प्रारम्भ हुआ, पहले जत्थे के साथ बिहारी ने भी खुदाई का काम किया। यद्यपि अन्य युवक उसे रोकते ही रहे कि आदमियों की कोई कमी थोड़े ही है, लेकिन उसका कहना था कि पवित्र काम में सभी का हाथ लगना चाहिये।

इञ्जीनियर साहब ने बिहारी से कहा, 'मैं तो बड़ा हैरान हूँ कि आपको गाँव वालों से इतना सहयोग कैसे मिल गया। अगर आज ऐसा ही उत्साह बना रहा तो खुदाई का काम बहुत जल्दी समाप्त हो जायगा।'

बिहारी ने हँसते हुये कहा, 'जब गांव वालों की समझ में आ गया कि तालाब के सुखाने में सारे गाँव का हित है तो सहयोग भी मिल गया। लेकिन आज तो आरम्भ है। अभी न जाने क्या क्या कठिनाइयां आयें ?'

'नहीं, अच्छी शुरूआत से ही ज्ञात हो जाता है कि अच्छी समाप्ति भी होगी। ओवरशियर तो आते ही रहेंगे। मैं भी कभी कभी समय निकाल कर इस योजना की प्रगति देखने आया करूँगा।' कौशल साहब ने कहा।

कुछ घण्टों की खुदाई के बाद ही मालूम पड़ने लगा कि धरती बड़ी कड़ी है और खुदाई में बड़ी मेहनत पड़ रही है।

इञ्जीनियर साहब ने सलाह दी कि यदि आगे आगे पानी छिड़क दिया जाय तो खुदाई में आसानी होगी। बस गाँव की औरतों की टोली घड़े लेकर टूट पड़ी और तालाब के पानी से ही जमीन तर की जाने लगी।

पहले दिन की खुदाई की प्रगति से गांव में प्रत्येक व्यक्ति को सन्तोष हुआ। लेकिन दो तीन दिन की खुदाई के बाद ही बिहारी को लगा कि इस प्रकार तो खोदी हुई मिट्टी का अपार ढेर लग जायगा। बड़ी चिकनी और मजबूत प्रकार की मिट्टी निकल रही थी। उसने सोचा कि यदि इस मिट्टी से देवा के मन्दिर के पास एक कच्चा पंचायत घर बनवाना भी आरंभ कर दिया जाय तो बिना अधिक परिश्रम के पूरा हो जायगा और गांव में एक सार्वजनिक स्थान भी हो जायगा। अतएव अगले दिन से आठ आदमी पञ्चायतघर बनाने के काम पर भी लग गये। एक बड़े और दो छोटे कमरों का पञ्चायतघर बनने लगा। दोनों ओर बरामदे भी छोड़ दिये गये।

मुखिया और नम्बरदार ने गांव में प्रचार किया कि पञ्चायतघर के नाम से बिहारी मुफ्त में अपने रहने के लिये दूसरा भवन बनवा रहा है और तालाब की जमीन भी वही हड़प लेगा, क्योंकि कौन रजिस्ट्री हो गई है। लेकिन अब इस प्रचार को सुनने वाले अधिक लोग गांव में नहीं थे।

बिहारी सारे सारे दिन खुदाई करने वालों के साथ रहता, जिससे उनका उत्साह मन्द न पड़े। पञ्चायत की ओर से खोदने वालों में गुड़ चना बंटवाने का प्रबन्ध भी उसने करा दिया था। और अन्त में जिस कार्य के लिये इन्जीनियर साहब ने दो माह का समय और पच्चीस हजार रुपये खर्च का अनुमान लगाया था, वह गांव वालों के सामूहिक प्रयत्न से चालीस दिन में ही कुल एक सौ बावन रुपये में पूरा हो गया।

अभी नाले और तालाब के बीच की मेंड़ नहीं फोड़ी गई थी। उसके लिये भी शुभ दिन नियत होना था। लेकिन बिहारी की योजना का कठिनतम भाग पूरा हो चुका था।

सब की सलाह से जेठ के दशहरे के दिन तालाब की मेंड़ फोड़ने का मुहूर्त निश्चित हुआ। बिहारी ने उस दिन भी इन्जीनियर साहब को आमन्त्रित किया और उन्होंने सारे गांव वालों की उपस्थिति में तालाब की मेंड़ फोड़ कर उसका सम्बन्ध नाले से स्थापित किया। सदियों का बंधा हुआ काला पानी वेग से नाले में बहने लगा। लोगों का अत्यधिक आह्लाद गगनभेदी जय जयकार में फूट पड़ा। बिहारी को लगा जैसे गांव का दूषित रक्त नाले में बहकर जा रहा हो। जैसे गांव में नवीन स्वस्थ रक्त का संचार हो, रहा हो उसे प्रसन्नता थी कि वह काला अजगर जो सैकड़ों सालों से गांव की छाती पर बैठा था आज जबरदस्ती निकाला जा रहा था, जिससे गांव पनप सके।

पानी के बहने से तालाब धीरे धीरे खाली हो रहा था और नीचे की काली काली धरती किनारों से खुलने लगी थी। मजदूरों और किसानों की आंखें प्रसन्नता से दमक रही थीं कि इस धरती में तो धान की बहुत अच्छी खेती होगी और सालों तक खाद देने की भी ज़रूरत नहीं पड़ेगी। जेठ की धूप में दलदल और तालाब की धरती को सूखने में अधिक समय नहीं लगा।

तालाब और दलदल की भूमि के बंटवारे में भी कोई कठिनाई नहीं पड़ी, क्योंकि गांव पंचायत के पास प्रत्येक व्यक्ति द्वारा किए गये श्रम का पूरा हिसाब था और उसी अनुपात से भूमि का बंटवारा कर दिया गया। गांव वालों के अत्यंत अनुरोध करने पर भी बिहारी ने भूमि का कोई भाग अपने लिए नहीं लिया। उसने कहा, 'मैं पंचायत का नौकर

हूं। अपने काम के लिए मुझे वेतन मिलता है। अपने कर्त्तव्य का कोई अन्य पुरस्कार मुझे नहीं चाहिये। सारे गांव की उन्नति ही मेरा इनाम है।'

बिहारी के इस निर्णय से रामधन की पार्टी वालों के मुखों पर सदा के लिये ताले पड़ गये। कुंडा गांव की इस असाधारण सफलता का समाचार धीरे धीरे जिला अधिकारियों से होता हुआ प्रांतीय सरकार तक पहुंचा और कितने ही उच्च अधिकारी गांव में इस योजना को देखने आये तथा बिहारी एवं गांववासियों की भूरि भूरि सराहना की। ग्रामवासियों के इस महत्त्वपूर्ण रचनात्मक कार्य के सम्मान के रूप में प्रांतीय सरकार ने पंचायत को एक रेडियो सेट भेंट किया, जो नवनिर्मित पंचायत घर में स्थापित कर दिया गया और नित्य शाम को नियम से बजने लगा। कुछ लोगों को तो ऐसा चसका लगा कि बिना रेडियो सुने चैन ही नहीं पड़ता था।

कार्तिक का महीना था और हलकी हलकी ठंड पड़नी आरम्भ हो गई थी। लेकिन गाँव में अलाव अभी आरम्भ नहीं हुआ था। संध्या समय गांव के बड़े, बच्चे और कुछ स्त्रियाँ पंचायत घर पर एकत्र होतीं और रेडियो से देहाती गाने, वार्त्ता और खबरें सुन कर अपना ज्ञानवर्द्धन करतीं।

बड़े लोगों की मंडली में उस दिन चर्चा थी 'हापुड़ के काश्तकार ने बड़े आलू पैदा किये। भला सा ही नाम था उसका। धरती तो अपनी भी हेठी नहीं है। अब की आलू भी बोकर देखेंगे। अपने बीज गोदाम वाले से कहेंगे कि हापुड़ वाला बीज मंगावे।'

दूसरी ओर बैठी कुछ औरतें देहाती गीत सुनकर आपस में कह रहीं थीं, 'अरे यह तो हम लोगों की तरह ही गाये हैं।'

और बिहारी एक ओर खड़ा शरद चन्द्रिका में सामने तालाब की धरती में उत्पन्न धान के ढेरों की ओर देखता हुआ कुछ सोच रहा था। उसे सन्तोष था जैसा कि एक कलाकार को अपनी इष्ट कृति के पूर्ण होने पर होता है, जैसा शाहजहां को ताजमहल बन जाने पर हुआ होगा। उसे लग रहा था जैसे गांव की धरती बंधनमुक्त होकर अंगड़ाई लेती हुई शीतल चन्द्रिका में हँस रही हो।

काली दीवार

इधर जब से नई भाभी आई हैं रज्जू भाई साहब के पास मेरा जाना नहीं हो सका। नहीं तो वर्ष में कम से कम दो बार तो हम लोग अवश्य मिल लिया करते थे। अब मिलें भी तो कैसे ? वह जा भी तो पड़े हैं बिल्कुल अलग देहरादून में। पहले तो इलाहाबाद से घर आते जाते रास्ते में कानपुर में एक दो दिन के लिये सदैव उनके पास रह लेता था। रज्जू भाई साहब मेरे सगे भाई नहीं परन्तु हम लोगों के प्रेम और व्यवहार को देखकर ऐसा कोई कह नहीं सकता। वैसे आज-कल सगे भाइयों तक में तनाव और वैषम्य दीखता है। घर घर के यही हाल हैं। लेकिन रज्जू भाई साहब जितना मुझे मानते हैं उतना कोई सगा भाई क्या मानेगा ? इसलिये मई की एक शाम जब मैं उनके यहां जा पहुँचा तो वह विशेष प्रसन्न हुये मानो कोई अपने युद्ध से सकुशल लौटे हुये सम्बन्धी से मिला हो। नई भाभी ने भी अत्यन्त उत्साह प्रकट किया और कुछ ही मिनटों बाद 'लल्लाजी' 'लल्लाजी' सम्बोधन कर उन्होंने मुझसे जमाने भर की बातें पूछ डालीं। उनके व्यवहार में भी मुझे तनिक भी कृत्रिमता का आभास नहीं मिला—जैसे मेरा उनका बर्षों का परिचय हो। भाभीजी की बातचीत से मुझे ऐसा लगा कि रज्जू भाई साहब ने पहले ही उनको मेरे विषय में सब कुछ बता दिया है। उस दिन रात को बड़ी देर में खाना समाप्त हुआ और उसके उपरान्त हम तीनों ऊपर तीसरी मंजिल के कमरे में सोने को गये। मैं इस बार पूरे ढाई वर्ष बाद आया था इसलिये बातचीत का क्षेत्र भी बड़ा विस्तृत था। तीनों व्यक्तियों के पलङ्ग पास पास ही पड़े हुये थे। भाई साहब ने कहा—'वैसे सुमन, मुझे देहरादून कानपुर

से कहीं अधिक पसन्द है लेकिन एक बात खटकती है कि घर से बड़ी दूर आ पड़े हैं।'

मैंने भी योग दिया--'हाँ भला कानपूर और देहरादून का क्या मुक़ाबला ?'

'अगले इतवार को मंसूरी का प्रोग्राम कैसा रहेगा ? तुम तो अभी तक मन्सूरी गये नहीं हो।' भाई साहब ने मुझसे पूछा।

मैंने तुरन्त उत्तर दिया—'मुझे क्या एतराज हो सकता है ? मैं तो आया ही घूमने फिरने के लिये हूँ। भाभी जी को भी सहूलियत रहेगी या नहीं यह देख......'

बात समाप्त होने से पहले ही भाभीजी बोल पड़ीं— 'अरे ! मुझे कौन पहाड़ी के पत्थर ढोने पड़ते हैं जो मेरे अवकाश का प्रश्न हो ? मेरी जान कल ही चलो।'

इसी प्रकार बातें करते करते रात के ग्यारह बज गये परन्तु बातें समाप्त होने को न आती थीं। अन्त में भाई साहब ने कहा—'अब सब लोग सोओ क्योंकि मुझे तो सुबह सात बजे ही फैक्टरी जाना है। बातें तो रोज़ ही होती रहेंगीं।'

सब लोग चुप हो गये और सो जाने का प्रयत्न करने लगे। लेकिन मुझे नींद नहीं आ रही थी। पहली भाभी जी की याद उठ आती थी और मन ही मन उनकी तुलना नई भाभीजी से कर रहा था। उनका व्यवहार भी इन्हीं की तरह स्नेह सिक्त था। इनसे वह कुछ अधिक लम्बी थीं और शायद अधिक रूपवान भी। बुरी तो ख़ैर यह भी नहीं हैं। मैं हर तरह से यह समझने का प्रयन्न कर रहा था कि उस रिक्त स्थान की पूर्ति इन्होंने किस हद तक की है। न जाने क्यों मेरा मन इस बात के लिये तैयार नहीं हो रहा था कि यह भाभीजी पहली से श्रेष्ठ हैं। अपने विवाह के बाद केवल दो

वर्ष जीवित रहीं। लेकिन इन दो वर्षों में ही उन्होंने सारे घर को स्वर्ग बना लिया था। यहाँ तो भाई साहब अकेले रहते हैं लेकिन कानपूर में तो सारा परिवार था। गृह कलह की वहाँ अधिक सम्भावना थी। लेकिन फिर भी उस घर में जाने से ऐसा लगता था मानो किसी अशोक वृक्ष के नीचे पहुंच गये हों। उन भाभी जी के कोई संतान न हुई और दुनियां की कहावत के अनुसार आज उनकी कोई निशानी भी नहीं है। लेकिन इस घर में आने से मुझे बरबस उनकी याद आ गई। कारण होने पर भी उनकी कभी किसी से लड़ाई नहीं हुई। अपने मृदु व्यवहार से उन्होंने अपने चारों ओर के वातावरण में एक मनोरम-मृदुता फैला दी थी। उनका एक वाक्य मुझे आज भी याद था जो वह ऐसे समय पर कहा करती थीं—'अगर दुनिया में जीना ही है तो लड़ने झगड़ने की अपेक्षा हँसी खुशी से ही क्यों न जिया जाय?' और वास्तव में उन्होंने अपनी ज़िन्दगी हँसी खुशी से ही गुजार दी।

यही सब सोचते सोचते मै कब सो गया मुझे याद नहीं।

× × ×

भाई साहब की फैक्टरी की नौकरी है। सुबह आठ बजे के गये शाम को पाँच बजे लौटते हैं। इसलिए सुबह केवल नाश्ता करके फैक्टरी चले जाते हैं। दोपहर को बारह बजे चपरासी घर से खाना ले जाता है। फैक्टरी अभी नई है और इसलिये उसमें अभी रहने के बंगले नहीं बन पाये हैं। अन्यथा फिर यह दिक्कत दूर हो जावेगी। दूसरे दिन सुबह दूसरी मंजिल के बड़े कमरे में हम लोगों का नाश्ता चल रहा था। भाभी जी स्टोव पर चाय नाश्ता तैयार करती जा रही थीं और हम लोग निकट ही चटाई पर बैठे खा-पी रहे थे। भाभीजी भी मेरे आग्रह पर कभी-कभी एक आध टुकड़ा अपने

मुँह में रख लेती थीं। भाई साहब की दृष्टि घड़ी पर ही लगी थी। साढ़े सात बजा देखकर वह उठ खड़े हुये और बोले—'मुझे तो अब तैयार होना चाहिये। अब तुम दोनों खाते रहना।'

उठकर उन्होंने अपने कपड़े की अलमारी खोली और पेन्ट तथा कमीज निकालने लगे। अलमारी के ऊपर के खाने में कपड़ों के बीच में पहली भाभीजी का मढ़ा हुआ फोटो रखा था। पहले तो वह उसकी ओर कुछ क्षण देखते रहे पुनः मेरी ओर मुड़कर बोले—'देखो सुमन, तुम्हारी पहली भाभाजी अब भी मेरे कपड़ों की देखभाल किया करती हैं।'

मेरे मस्तिष्क में बिजली की कोंध की तरह एक स्मृति दौड़ गई—पहली भाभाजी भाई साहब के फैक्टरी जाने के समय पचास काम छोड़कर उनके कपड़े स्वयं अपने हाथ से निकाल कर दिया करतीं थीं मैंने सोचा शायद उसी को लक्ष्य करके भाई साहब ने उपरोक्त बात कही हो। मैं कुछ मुस्करा उठा। मैंने देखा भाभाजी की मुद्रा कुछ गम्भीर हो गई थी।

भाई साहब ने अब तक फोटो अलमारी से बाहर निकाल लिया था और हाथ में लिये उसकी ओर देखते हुये बोले—'सुमन, उनका सिर्फ यही एक फोटो मेरे पास है। एक और फोटो खिचवाने की मैं सोचता ही रह गया और तब तक वह चल भी दीं।'

इससे पहले कि मैं कुछ कहूं भाभाजी कुछ व्यंगात्मक स्वर में बोल पड़ीं—'कपड़े क्यों न सम्भालेंगी लल्लाजी। देखा न फोटो। कैसी घँघरिया की तरह साड़ी पहन रक्खी है।' और फिर मुंह बिचकाते हुये कहा—'बिल्कुल इन्द्र के अखाड़े की अप्सरा है।'

भाई साहब न जाने किस मूड में थे कि उनके आर्द्र नेत्रों से द्विधारा फूट पड़ी और तुरन्त फोटो को फ्रेम से निकाल कर टुकड़े टुकड़े करके भाभीजी के सामने फर्श पर फेंकते हुए बोले—'बस अब तो खुश हुई देवी। यही तो चाहती थीं न आप ?'

यह सब कुछ ऐसे आकस्मिक वेग से हुआ कि मैं भौचक्का सा देखता ही रह गया मानों क्षण भर के लिये कोई भूकम्प का धक्का आया हो। मेरी समझ में नहीं आया कि ऐसी स्थिति में क्या करूं और क्या कहूं।

विस्फोट के गर्जन के बाद जैसी शान्ति छा जाती है वैसी ही नीरवता कमरे में व्याप्त थी। हम तीनों चुप थे। भाई साहब कुर्सी पर बैठे सिर झुकाये अपने जूते के फीते बांधने में संलग्न थे और भाभीजी फर्श पर पड़े फोटो के टुकड़ों पर दृष्टि जमाये थीं। शायद इतने भीषण परिणाम के लिये वह स्वयं तैयार नहीं थी और मैं हतबुद्धि-सा कभी भाई साहब, कभी भाभीजी और कभी फोटो के टुकड़ों की ओर देख रहा था।

भाई साहब कपड़े पहन कर बिना पान खाये ही खट खट करते हुये सीढ़ियां उतर गये। भाभीजी भी कुछ देर तक निश्चल बैठी रहीं फिर यकायक तेजी से उठकर रसोईघर में जा घुसीं। जलते हुये स्टोव को बुझाने का दुस्तर कार्य मुझे करना पड़ा क्योंकि काफ़ी देर से जलते रहने के कारण उसकी चाभी तक गर्म हो गई थी।

ऊसर के वृक्ष की भांति मैं कमरे में अकेला रह गया। मैं उठकर इधर से उधर घूमने लगा। कोने में रखी मेज पर मैंने देखा 'शृङ्खला की कड़ियां' पड़ी हुई थीं। पुस्तक उठाकर मैंने उसका प्रथम पृष्ठ उलटा। अत्यन्त सुन्दर लिपि में एक कोने में भाभीजी का नाम लिखा हुआ था। मुझे आश्चर्य

हुआ कि भाभीजी ऐसी पुस्तकें भी पढ़ती हैं। कमरे में मुझे बड़ी घुटन सी लगने लगी और मैं कुछ बातें करने को उद्यत हो गया। रसोई में जाकर देखा–भाभीजी चूल्हे के पास बैठी बड़े बड़े आंसुओं से रो रही हैं। 'श्रृङ्खला की कड़ियां' पढ़ने वाली नारी इस प्रकार रो भी सकती है—मुझे दूसरा आश्चर्य हुआ। मुझे आया देखकर भाभीजी के आंसू निकलने बन्द हो गये और उन्होंने आंचल से अपनी दोनों आंखें पोंछ डालीं। मैं भी रसोई के द्वार के निकट एक पटा डाल कर बैठ गया। काफ़ी देर तक हम दोनों चुप बैठे रहे।

अन्त में मैंने ही निस्तब्धता भंग की—'भाभीजी, आप इस तरह क्यों रो रही थीं ?' उत्तर देने में वह रोई नहीं। अत्यन्त संयत स्वर में उन्होंने उत्तर दिया—'क्या बताऊँ, लल्लाजी, किसी जमाने में जिस किस्मत शब्द की मैं खिल्ली उड़ाया करती थी आज उसी को रोती हूँ।'

'लेकिन इसमें किस्मत को रोने की क्या बात है ?' आपका व्यंग भी तो काफ़ी कटु था मैंने उत्तर दिया।

'और उनका उत्तर क्या उससे भी अधिक कटु और तीक्ष्ण नहीं था ?' उन्होंने उसी भाव से बिना हिचके उत्तर दिया जैसे क्रिकेट का कोई असाधारण खिलाड़ी किसी नव-सिखुये गेंद फेंकने वाले की गेंदें पीट रहा हो। मुझे स्वयं लगा कि इस ज़रा सी बात पर भाई साहब का फोटो फाड़ देना वाकई ज्यादती थी।

आखिर मैंने कहा ही—'भावुकता में वह सीमा का अतिक्रमण कर गये।'

मैं सोच रहा था कि मेरी भाई साहब की वकालत से वह कुछ खीजेंगी। परन्तु मेरा अनुमान गलत साबित हुआ। उन्होंने बड़ी शान्ति के साथ उत्तर दिया—'नहीं लल्लाजी भावुकता

की बात नहीं । कुछ लोगों की यह प्रकृति होती है कि वे दूसरों को अपनी भावनाओं के अनुसार नचाना चाहते हैं । स्वयं दूसरों की भावनाओं को समझने की कोशिश नहीं करते ।'

वह कुछ देर रुकीं मानो वह मुझे बोलने का अवसर देना चाहती हों । परन्तु मुझे चुप देखकर उन्होंने फिर कहना शुरू किया—'मैं पूछती हूँ कि एक व्यक्ति जो अपनी पहली स्त्री पर इस प्रकार जान देता है उसने दूसरी शादी क्यों की ? उसे तो उचित था कि नित्य फूल धूप से उसकी मूर्ति की अर्चना करता । आप इसे असम्भव कहेंगे । लेकिन मैं कहती हूँ कि असम्भव क्यों है ? क्या विधवायें ऐसा नहीं करतीं ? दूसरी शादी करके एक निर्दोष कुमारी को जलाने और कुढ़ाने का इन अपराधियों को क्या अधिकार है ?'

मैं चुप सुन रहा था लेकिन भाभीजी का बांध फूट पड़ा था । वह कहती ही गईं 'आप सच मानिये लल्लाजी, पिताजी को इस शादी में बड़ा धोखा हुआ । उनको अन्तिम समय तक यह पता ही नहीं लगा कि लड़का दूजिया है । नहीं तो भला इतने रुपये खर्च करके भी अपनी लड़की दूजिया से कौन ब्याहता ?'

रज्जू भाई साहब के प्रति मेरी बड़ी श्रद्धा थी । उस श्रद्धा पर चोट सहने के लिये मैं तैयार नहीं था । परन्तु भाभीजी के आक्षेपों का समुचित उत्तार देने में भी अपने को असमर्थ पा रहा था । फिर भी मैंने कहा ही—'धोखे की बात तो मैं नहीं जानता । लेकिन मुझे तो आज तक भाई साहब में कोई दोष नहीं दिखाई दिया ।'

मेरी क्रुद्धता की ओर लक्ष्य करते हुये वह बोली—'इसमें बुरा मानने की कोई बात नहीं । आपके भाई साहब में

कोई दोष नहीं है लेकिन दूजिया होने पर जो मनोवृत्ति का परिवर्तन हो जाता है उसके लिये आप क्या करेंगे ? मैं उदाहरण देती हूँ। एक दिन की बात है। शाम के समय मैं इसी कमरे में सड़क की ओर के द्वार में खड़ी नीचे देख रही थी। आपके भाई साहब फेक्टरी से लौट कर आये और मुझे बाहर देखते हुये पाकर बोले—'यह क्या रंडियों की तरह राहगीरों को तकती हो' और फिर जो जो कहा उसे कहना मैं उचित नहीं समझती। मैं पूछती हूँ कि इस व्यवहार का क्या कारण था। यही तो न कि उन्हें मुझ पर विश्वास नहीं है। क्योंकि वह यह नहीं भुला पाते कि मैं उनकी दूसरी स्त्री हूँ। वह अपनी कमजोरी पहचानते हैं। वह शायद सोचते हैं कि वह मेरे उपयुक्त नहीं हैं। तभी तो इस चौकी पहरे की आवश्यकता पड़ती है। मैं कहती हूं कि क्या मुझमें अपने हानि लाभ सोचने की बुद्धि नहीं है ? और यदि मुझे कुपथ पर ही चलना है तो मुझे कौन रोक सकता है ? मैं आपसे निश्चयपूर्वक कहती हूँ कि अपनी पहिली स्त्री के साथ वह ऐसा व्यवहार कदापि नहीं कर सकते थे। क्योंकि वहां दोनों एक ही ऊँचाई पर खड़े थे। लेकिन अब उनके और मेरे स्थान में अन्तर है।'

वह कुछ देर को थमीं। रसोई की नीरवता में दाल की पतीली के ऊपर ढकी हल्की तश्तरी का समरस शब्द हो रहा था। मैं भाभीजी के गले की दो नसों की ओर देख रहा था जो उनके बोलते रहने के कारण कुछ फूल गई थीं। उन्होंने फिर बोलना शुरू कर दिया—'आज जो घटना हुई है वह कुछ नई नहीं है। कभी कुछ और कभी कुछ होता ही रहता है। और जो सबसे अभागी चीज़ है वह है हफ्तों के लिये बातचीत बन्द हो जाना। आप तो बाहर जाते हैं। बोल सकते हैं, हँस सकते हैं, मज़ाक कर सकते हैं। लेकिन मैं घर के भीतर क्या

करूँ ? मुझे तो 'सालिटरी कनफाइमेंट' की कठोर सजा हो जाती है। यदि आप नहीं बोलते तो मैं क्यों बोलूँ ? आप देख लीजियेगा कि अब कितने दिन बोलचाल नहीं होती। आपसे सच कहती हूं लल्लाजी, ऐसी जिन्दगी से मैं ऊब चुकी हूं। जी रही हूं क्योंकि मुझे जीवन प्रिय है।......'

भाभी जी मुझे बहुत ऊँची उठती हुई लग रही थीं। मैंने पतीली की ओर उनका ध्यान खींचते हुए कहा—'कहीं दाल न लग गई हो।'

उन्होंने दाल देखने की अपेक्षा चूल्हे की लकड़ियां बाहर खीच दीं मानो वह आज सारी बातें करने को कटिबद्ध थीं। वह फिर बोलने लगीं—'मैंने आज तक यह बातें किसी से नहीं कहीं। लेकिन आपका जितना परिचय मैं आपके देखने से पहले ही पा चुकी हूँ उसी आधार पर आज यह सब आपसे कह रही हूँ। मैंने इन सब बातों पर सोचा है और खूब सोचा है और दिन भर मुझे करना ही क्या पड़ता है ? मिसरानी के भाग जाने से आज दो दिन से पाकशाला में अपना कौशल दिखाना पड़ रहा है।'

मेरी दृष्टि में भाभी जी का मूल्य बराबर बढ़ता जा रहा था। मैंने पूछा—'भाभी जी, जब आप इतनी बुद्धिमान हैं तो क्या आप इस विषम परिस्थिति का कोई हल नहीं निकाल सकतीं ?'

'हल क्यों नहीं है ? हल प्रत्यक्ष है। मैं उनकी हँसी के साथ हँसूँ, उनकी इच्छाओं के अनुसार नाचूँ, अपने व्यक्तित्व को मसल डालूँ तो सब कुछ ठीक है। फिर कोई जटिलता नहीं आवेगी। मेरे व्यक्तित्व की भस्म ही इसका हल है। लेकिन दुर्भाग्य से यही मेरी सीमा है। सब कुछ कर सकती हूँ लेकिन अपने व्यक्तित्व का बलिदान नहीं कर सकती। अगर

यही कर दिया तो मुझ में और मेरे शव में अन्तर ही क्या रह जावेगा ? मैं अपनी ओर से इसका और कोई इलाज नहीं सोच पाती।' फिर बोलीं—'देखिये, शायद जीने पर तरकारी वाली बुढ़िया आवाज दे रही है। आज आप अपनी पसन्द की तरकारियां खरीद लीजिये। पैसे वहीं पानदान में पड़े होंगे।'

आज्ञाकारी विद्यार्थी की भाँति मैं तुरन्त उठ पड़ा। मैं कुछ देर को एकान्त में होना चाहता था क्योंकि मुझे लग रहा था जैसे कोई बड़ी भारी सिल मेरे मस्तिष्क पर सरकती आ रही हो।

× × ×

शाम को भाई साहब के फैक्टरी से लौटने पर मैंने देखा कि वास्तव में दोनों में बातचीत बन्द है। मैं पहले ही छत पर चला गया था और काली काली पहाड़ियों के पीछे सूर्य के छिपने का मनोरम दृश्य देख रहा था। लेकिन भाई साहब भी नहाने-धोने के बाद ऊपर मेरे पास चले आये। हम दोनों छत पर एक सिरे से दूसरे सिरे तक घूमने लगे। मैंने अस्तप्राय सूर्य की अन्तिम किरणों का पहाड़ियों पर बिखरने के सुन्दर दृश्य की ओर उनका ध्यान आकर्षित किया।

वह बोले—'नन्दा देवी की वर्फीली चोटियों पर सूर्य की किरणें पड़ने का दृश्य और भी सुन्दर होता है। दूर से ऐसा लगता है जैसे आग में शुद्ध सोना दमक रहा हो। मंसूरी में एक स्थान से यह दृश्य दीखता है। तुम उसे देखकर बहुत खुश होगे।'

फिर कुछ देर तक हम लोग चुपचाप घूमते रहे। यह मैं बराबर लक्ष्य कर रहा था कि भाई साहब कुछ कहने के लिये आतुर हैं लेकिन वह शायद यह नहीं सोच पा रहे थे कि किस प्रकार बात शुरू की जाय। अन्त में उन्होंने कहा ही—'सुमन,

इस बार तुम्हें मेरे पास रहने में पहली जैसी प्रसन्नता नहीं हो रही होगी ?'

'तब बात और थी ।' मैंने संक्षिप्त-सा उत्तर दिया ।

'क्या बताऊँ, जब से तुम्हारी यह भाभी आई हैं जीवन ऐसा नीरस और मनहूस हो गया है जिसकी मैंने कल्पना भी नहीं की थी । सच कहता हूँ सोना खोकर मैंने पत्थर उठा लिया ।'

'ऐसी बुरी तो यह भाभी जी नहीं हैं जैसा कि आप कह रहे हैं ।'

'यह बात नहीं है, सुमन । अगर आदमी को एक चीज खोने के बाद जो दूसरी चीज मिले वह पहली से अच्छी हो तो धीरे धीरे वह पहली चीज को भूल भी जाता है । लेकिन अगर वह पहली के बराबर न होकर उससे हीन हो तो बरबस समय समय पर पहली की याद आ ही जाती है । तुम्हारी पहली भाभी जितना मेरा करती थीं वह तुम जानते ही हो । फैक्टरी जाने से पहले मेरे कपड़े निकालना, ब्रुश करना और यहां तक कि जूतों पर पालिश तक वह स्वयं करती थीं । मुझे याद ही नहीं आती कि कभी उनसे मेरी लड़ाई हुई हो । और यदि एकाध बार हुई भी हो तो उसने बोलना कभी नहीं छोड़ा । दिन में घर में किसी से कलह भी हो गई हो तब भी फैक्टरी से लौटने पर मैंने उसे हमेशा हँसते हुए ही पाया । इनको उसका नाम तक भी नहीं भाता लेकिन मैं उसकी स्मृति कैसे त्याग दूँ ?'

मैं अब समझ रहा था कि इस विषमता की गांठ कहां पर है । इन भाभी जी का पिछली भाभी जी से अन्तर स्पष्ट था । पहली भाभी जी अपने व्यक्तित्व के प्रति उदासीन थीं । उनको यह पता भी नहीं था कि उनका कोई व्यक्तित्व है । लेकिन

यह भाभी जी अपने व्यक्तित्व के प्रति सचेत थीं। अपने स्वाभिमान पर कोई चोट उन्हें असहनीय थी। अपने ऊपर किसी का हावी होना उन्हें गवारा नहीं था।

भाई साहब अपने प्रथम दाम्पत्य जीवन के अनेक सुखपूर्ण संस्मरण करुणा विगलित स्वर से सुनाते रहे। ऐसा लगता था जैसे वह अब रोये और तब रोये। मैं कभी-कभार एक-आध छोटी-मोटी टिप्पणी करने के अतिरिक्त अधिकांश में मौन ही रहा। मैं सोच रहा था—जटिलता यह है कि भाई साहब नई भाभी जी से पहली भाभी जी जैसे व्यवहार की अपेक्षा करते हैं। वह इन दोनों के अन्तर को नहीं समझ पा रहे हैं। वह नहीं सोचते कि जहां पहली भाभी जी को 'शृङ्खला की कड़ियों' का स्वप्न में भी ध्यान नहीं था वहाँ यह भाभी जी उन कड़ियों को समझती ही नहीं महसूस भी करती हैं। यह भाभी पुरुष के आगे झुकने में नारीत्व का अपमान देखती हैं। इनसे किसी का मिलाप समानता के आधार पर ही हो सकता है। भाई साहब का रूढ़िबद्ध पुरुष शायद इस सीमा तक जाने को तैयार नहीं है।

मैं अपने विचारों में कभी कभी इतना लीन हो जाता कि भाई साहब के प्रलाप के कुछ अंश नहीं सुन पाता। और यह क्रम न जाने कब तक चलता रहता यदि नीचे से भाभीजी की खाना खाने के लिए पुकार न आ जाती।

न जाने मैं किस अशुभ घड़ी में देहरादून आया था कि आते ही बादल घिर आये और अब हटने का नाम नहीं ले रहे थे। ऐसे वातावरण में रहने का मैं आदी नहीं हूं और मुझे बड़ी उलझन सी हो रही थी। मैं इस गतिरोध का अन्त देखना चाहता था लेकिन कुछ उपाय न सूझता था। मैं जो

कुछ भी कह सकता था केवल भाभीजी से ही क्योंकि भाई साहब के सामने तो बहुत साहस करने पर भी संकोच के कारण मुँह नहीं खुल पाता था। और एक दिन दोपहर को मैं भाभीजी से पूछ ही बैठा—'भाभीजी, क्या घर की सुख और शान्ति वाँछनीय नहीं है ?'

सलाइयों पर से दृष्टि हटाकर जिज्ञासा सूचक नेत्रों से मुझे देखते हुए उन्होंने उत्तर दिया—'आपका मतलब समझी नहीं।'

'नागरिक शास्त्र का सिद्धांत है कि समाज की सुचारु व्यवस्था के लिए हम अपनी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का कुछ बलिदान करते हैं जिससे सब लोग समान रूप से सुखपूर्वक स्वतन्त्रता का उपभोग कर सकें। क्या यही सिद्धांत घर में भी लागू नहीं होता ? क्या घर की शांति के लिए हम अपने व्यक्तिगत स्वाभिमान के तनिक से अंश को बलिदान नहीं कर सकते ?'

'अवश्य, आप ठीक कहते हैं। लेकिन क्या यह बलिदान केवल एक व्यक्ति को करना होता है या समाज के सारे सदस्यों को ? यह भी आपने सोचा है ?'

'करना तो सभी लोगों को चाहिए। लेकिन यदि एक व्यक्ति इतना नहीं समझता है तो इसका यह अर्थ नहीं हैं कि सारा समाज उसी का ढंग ग्रहण कर ले। इससे तो समाज विशृंखल हो जावेगा।' मैंने दलील की।

तीन दिन के कलह और एक बाहरी आदमी के सामने उसके लज्जापूर्ण प्रदर्शन से भाभीजी काफी ऊबी हुई सी थीं। अतएव तर्क करने की अपेक्षा खीज भरे स्वर में उन्होंने पूछा—'तो आप मुझे क्या करने को कहते हैं ?'

'यही कि एक बार आप घर के वातावरण को मृदु करने का प्रयत्न करें। यद्यपि आपके सिद्धांत के विरुद्ध मैं आपसे ही झुकने के लिए कह रहा हूं। लेकिन यह निश्चय मानिये कि इसमें आपका अपमान नहीं गर्व ही है।'

'अच्छा कोशिश करूँगी' छोटा सा उत्तर देकर वह फिर बिनने में संलग्न हो गईं। मैंने भी अपनी पुस्तक में देखना आरम्भ किया यद्यपि इस विलक्षण नारी पर अपनी विजय की प्रसन्नता में कुछ काल तक मैं कुछ भी नहीं पढ़ सका। इतनी आसानी से भाभीजी मेरे प्रस्ताव को स्वीकार कर लेंगी—इसकी मैंने स्वप्न में भी आशा नहीं की थी।

× × ×

चौथे दिन की बात है। शुक्र का दिन था। दिन भर घर में बैठे रहने के बाद शाम को मैं बाज़ार घूमने के लिए निकल गया था। दो घण्टे बाद लौटने पर देखा कि भाभीजी रौद्र और करुण का विचित्र मिश्रण बनी बैठी हैं। मेरी ओर उन्होंने घूर कर देखा और निकट ही कुर्सी पर बैठने का संकेत किया।

'देख लिया न आपने? आपके कहने से ही मैं तैयार हुई थी और उसका क्या बढ़िया प्रतिफल मिला? अभी अपने बिस्तर छत पर ले जा रहे थे। मैंने कहा लाओ मैं रख आऊँ। इस पर मुझे जीने पर ही धक्का दे दिया। कसम से जरा ही गिरते गिरते बची हूँ।'

उनसे अधिक कहा नहीं गया। मैं भौचक्का सा बैठा सोच रहा था। इतने में ही भाई साहब ऊपर से नीचे उतर कर आए और मुझे देखकर बोले—'कहाँ घूमा करते हो सुमन? चच्चा (मेरे पिताजी) का तार आया है कि दिल्ली में तुम्हें विदेश जाने के लिए वजीफा देने को इन्टरव्यू के लिये बुलाया गया है। समय कम है और इसलिये अब तुम्हें सीधा दिल्ली

जाना चाहिये। देहरा एक्सप्रेस में अभी समय है। इसी से चलो तो कल सुबह दिल्ली पहुँच जावोगे।' कहते हुये तार उन्होंने मेरे सामने फेंक दिया।

मैंने जल्दी जल्दी अपने समान को बांधा बूँधी की और अनिश्चित भविष्य के कुहासे से घिरा घर से चल पड़ा। मैंने देखा कि चलते समय भाभीजी की आंखें भीगी थीं बोलीं—'इंटरव्यू के बाद यदि हो सके तो आने की कोशिश करना।'

भाई साहब मुझे भेजने स्टेशन तक आये थे। उनको इसी बात का दुख था कि देहरादून तक आकर भी मैं बिना मंसूरी देखे ही लौट रहा था।

आठ बजे के लगभग देहरा एक्सप्रेस छूटी। मैं डिब्बे के दरवाजे पर ही खड़ा था—कुछ शौक के कारण नहीं वरन सत्य यह था कि देहरादून से बनकर चलने पर भी गाड़ी में बैठने का स्थान नहीं था। हरिद्वार पर जगह मिलने की आशा थी। गाड़ी स्टेशन छोड़कर शहर के बाहर निकल आई। चारों ओर अँधेरा छाया हुआ था। इस अँधकार में दूर मंसूरी के बंगलों की कुछ कुछ फासले पर ऊँची नीची चमकती हुई बत्तियां जोकि गाड़ी की गति के कारण चलती हुई मालूम दे रही थी ऐसी लग रही थीं मानो हनूमानजी ऋष्यमूक पर्वत को उठाये आकाश में उड़े चले जा रहे हों। धीरे धीरे एक अन्य काली पहाड़ी गाड़ी और मंसूरी के बीच में आती गई और अंत में इस काली दीवार ने मंसूरी के दृश्य को पूर्णतया छुपा लिया। मैं सोचने लगा—आज कितने घरों में ऐसी ही काली दीवारें उठ रही हैं और मेरा हृदय अवसाद से भर गया। बाहर दृष्टि दौड़ाने पर देखा कि चारों ओर घना अंधकार छाया हुआ था परन्तु गाड़ी जीवन की भांति अविराम गति से दौड़ रही थी मानो उसको इन काली दीवारों की तनिक भी चिन्ता न हो।

अदृश्य दीवारें

आज हवा बिलकुल बन्द है। यद्यपि मैं अपने बंगले के बाहर लॉन में घूम रहा हूँ, लेकिन चैन नहीं पड़ रहा है। पत्ता भी तो नहीं हिलता। सामने कुछ दूर पर मैं देख रहा हूँ कि पत्तों के छोटे से ढेर में आग लगी हुई है और उसका धुआं ऊपर उठ रहा है—कुछ काला, कुछ नीला। मेरे मस्तिष्क में भी आग लगी हुई है। अन्तर केवल इतना है कि धुआं ऊपर उठने की अपेक्षा नीचे की ओर जा रहा है और मुझे झुलसा रहा है। लॉन के एक छोर से दूसरे छोर तक मैं चक्कर लगा रहा हूँ। लेकिन मेरा मस्तिष्क इससे भी अधिक तीव्रता से घूम रहा है। जैसे धधकती हुई आग पर राख पड़ जाने से वह कुछ काल को मन्द हो जाती है, परन्तु तनिक-सी हवा लगने से वह फिर दहक उठती है, उसी प्रकार जब तक मुझ पर काम की मार रहती है, मैं कुछ शान्त रहता हूँ। परन्तु तनिक-सा अवकाश मिलते ही दिमाग कुचले हुए साँप की तरह पछाड़ें खाने लगता है।

दिन छिपने में अभी घण्टे-डेढ़ घण्टे की देर है। सामने सड़क पर छज्जू सब्जी वाला खाली डलिया सिर पर रखे दोनों हाथों से पैसे गिनता हुआ तेजी से जा रहा है। मुहल्ले का शरारती लड़का टोकता है, 'कितने की मार दी, चौधरी ?'

'कुछ नहीं, यही ढाई रुपये के पैसे बचे हैं', वह बिना रुके उत्तर दे देता है।

'तब तो आजकल बड़े गहरे में हो !' लेकिन छज्जू अनसुनी किये उसी गति से चला जाता है।

आजकल की मंहगी में ढाई रुपये की क्या गिनती है, क्या महत्व है ! लेकिन छज्जू को रुकने की ताव कहां ! शीघ्र से शीघ्र वह यह सुसम्वाद अपनी घरवाली को सुनाना चाहता है, जो बैठी या काम करती हुई सोच रही होगी—'आज आये नहीं ! बड़ी अबेर हो गई।' और तभी छज्जू पहुँचकर अपनी असाधारण सफलता की सूचना देगा। वह खुशी-खुशी उसके हाथ-पैर धुलाने के लिये एक लोटा पानी देगी।

और फिर उसके बाद ?

ऐसे तो सोचने का अन्त नहीं हो सकता। मैंने अपने भटके घोड़े को लगाम का एक झटका दिया। इससे लाभ क्या कि किसी की पत्नी इस समय क्या सोच रही होगी ? लेकिन मेरी पत्नी अन्दर आंगन में बैठी क्या सोचती होगी ? वह सोच रही होगी—'बड़ी देर से बाहर घूम रहे हैं। सड़क से निकलती हुई लड़कियों और औरतों पर अपनी आंखें सेंक रहे होंगे। कहीं किसी से इश्क लड़ाना भी शुरू न कर दिया हो।'

आप यदि झूठ मानते हैं, तो देख लीजियेगा कि अभी कोई लड़का बाहर मुझे देखने को आयेगा अथवा किसी परदे या शीशे से वह स्वयं झांकेंगी। लीजिये, वह सुनील निकल आया न ! आखिर यह सब जासूसी क्यों ?

सुनील छः साल हुये पैदा हुआ था। आठ वर्ष हुये मेरा नीरा से विवाह हुआ था। सारी बातें मुझे एक-एक करके याद हैं, जैसे किसी संग्रहालय में वे करीने से संभाली हुई रखी हों। कितनी सुखद स्मृतियां हैं !

विवाह के उपरान्त कुछ समय बिताने के लिये हम दोनों हरिद्वार आये थे। वर्षा आरम्भ हो चुकी थी और हरिद्वार

बड़ा सुहावना रूप धारण किये हुये था। एक दिन हर की पैड़ी से हम दोनों पैदल ही वापस आ रहे थे। मेरा स्वास्थ्य भी बुरा नहीं था। मार्ग में दो पंजाबी युवतियां कुछ विचित्र ढंग से मुझे घूरतीं हुई निकलीं। मैंने नीरा के हाथ में चुटकी काटते हुये कहा। "देखा, नीरा ?"

"हूं ! तो चले जाओ न उनके पीछे। मैंने तो अपने कबूतर को पूरी छूट दे रखी है, क्योंकि मैं जानती हूं कि वह उड़ता चाहे सारी दुनिया में फिरे, लेकिन बैठेगा अपने थान पर ही।" यह कह कर नीरा ने सिर उठा कर मेरी ओर समर्थन की दृष्टि से देखा और वहां पर मनवाँछित प्रतिउत्तर पा कर वह कुछ और सट कर चलने लगी। उफ़, कितना विश्वास था नीरा के शब्दों में !

इसके बाद की बात है। एक दिन नीरा को लिफ़ाफ़े में बहुत से पुरुषों व स्त्रियों के चित्र हाथ लग गये। पूछने पर मैंने मज़ाक के लिए उत्तर दिया, 'मेरे मित्र और मित्राणियों के चित्र हैं। इन में बहुत सी तो तुम से भी सुन्दर हैं।'

इस पर नीरा ने मुंह बिचका कर कहा था, 'तुम तो मुझे बिलकुल बेवक़ूफ समझते हो। क्या मैं जानती नहीं कि हमारा प्रेम इतना छिछला नहीं है, जो तुम इस तरह बहका सको ?'

मैं कभी कभी आज भी सोचा करता हूं कि उस प्रेम के इस अगाध विश्वास का आधार क्या था ?

और उस दिन जब मैं छज्जे पर खड़ा नीचे चलने वाले पथिकों की तरफ़ देख रहा था, तो नीरा ने अन्दर से आकर मेरे पास खड़े हो कर कहा था, 'देखो यह बुरी आदत है। कहीं खो न जाना।'

इस पर जब मैंने उलट कर पूछा था, 'क्या तुम्हारा यही मतलब है जो तुमने कहा है ?' तो नीरा ने मेरी कमर में हाथ

डाल कर कहा था, 'उफ़ तुम तो बिलकुल भी नहीं समझते। क्या मुझे इसका ढिंढोरा पीटना पड़ेगा कि मेरा प्रदीप मेरे सिवा और किसी का नहीं हो सकता ?'

कहां तक गिनूं—ऐसी पचासों ही स्मृतियां हैं। तब दो साल बाद सुनील उत्पन्न हुआ और नीरा के शब्दों में हमारे प्रेम की प्रथम मोहर। और उसके दो-दो साल के अन्तर से बिन्नी और मंजू भी अवतीर्ण। मेरा जीवन चक्र भी तेजी से घूमा। कालेज की रंगीन दुनिया समाप्त होने पर बेकारी का भूत सामने आया और अन्त में उसकी परिणति हुई इस बीमा कम्पनी की इन्सपेक्टरी में। जीवन नौका सैकड़ों थपेड़ों के बाद कूल पर लगी। कीटस, शैली और उमर ख़य्याम के काल्पनिक लोक से निर्वासित हो कर मैंने अपने को पाया घोर भौतिकवादी संसार की कठोर भूमि पर। मानसिक क्षितिज पर भी कई पट परिवर्तन हुये और जीवन के प्रति मेरा दृष्टिकोण भी बदला। व्यस्तता बेहद बढ़ गई। चपलता गम्भीरता में बदल गई। यद्यपि काफी वेतन के अतिरिक्त अन्य अनेक सुविधायें भी मुझे इस नौकरी में प्राप्त हैं, परन्तु यह चिन्ता सदैव सवार रहती है कि कहीं मेरे क्षेत्र का बिजनेस न गिर जाय; मेरे अन्य सहकर्मी मुझ से बाजी न मार ले जायं, ब्रांच सेक्रेटरी की दृष्टि मेरी ओर से न बदले इस सबका परिणाम यह हुआ कि मेरा काफ़ी समय घर के बाहर इधर उधर ख़र्च होने लगा और नीरा को शिकायत होने लगी कि मैं उसे अब उतना प्रेम नहीं करता।

मैं उसे अकसर समझाता : 'उमर के साथ हमारे प्रेम में अधिक गुरुता और गम्भीरता आनी चाहिये। बच्चे उत्पन्न होने के उपरान्त कुछ परिवर्तन होना अनिवार्य है। नव-विवाहितों जैसी अल्हड़ता और सतृष्णता अब कैसे चल सकती है ?'

लेकिन नीरा को यह अवस्था स्वीकार न थी। उसका तर्क था : 'बच्चों से क्या होता है ? यह तो मन की बात है। तुम अब मुझे प्रेम नहीं करते। मुझ से जानबूझ कर हमेशा कटते रहते हो।'

मैं व्यर्थ प्रयत्न करता : 'जीवन बड़ा व्यस्त हो गया है, मैं अब भी उतना ही प्रेम करता हूँ, अनावश्यक प्रदर्शन अवश्य कम हो गया है।'

परन्तु नीरा न मानती। उसका संशय बराबर यही रहता कि मैं किसी अन्य स्त्री से प्रेम करता हूँ और उसे यों ही बहकाना चाहता हूँ।

एक दिन तो ऐसी ही चखचख में नीरा यहां तक कह बैठी : 'मैं जानती हूँ कि तुम मुझे अब क्यों प्रेम नहीं करते। अब मैं उतनी सुन्दर नहीं रही हूँ। बच्चे होने के कारण मेरा शरीर बेडौल और लचर हो गया है। अब मैं तुम्हें अच्छी नहीं लगती। तुम तो अब भी वैसे ही हो, जैसे छः साल पहले थे। तुम में कुछ भी परिवर्तन नहीं हुआ। लेकिन बताओ, मैं क्या करूँ ? तुम्हीं ने तो मेरे शरीर का सत्यानाश किया है।'

मुझे मार्मिक दुःख हुआ। उत्तर दिया, 'नीरा, तुम्हारी धारणा बिलकुल बेबुनियाद है। तुम ऐसा सोचती क्यों हो ? मैंने तो स्वप्न में भी इस तरह नहीं सोचा। मैं तो जानता हूँ कि इन छः वर्षों का प्रभाव मुझ पर भी तुम से कम नहीं पड़ा है।'

लेकिन नीरा ने तो यहाँ तक कह डाला, 'मुझे तुम्हारे स्वास्थ्य से डाह होती है, घृणा होती है। ऐसे स्वास्थ्य और रूप पर तो कुमारियां तक मंडरायेंगी।'

यह समस्या की पराकाष्ठा थी। मैं हतबुद्धि रह गया। एक पत्नी अपने पति के स्वास्थ्य से ईर्षा करे, उसे फूटी आंख

न देख सके। भला इस से अधिक अभागी स्थिति और क्या हो सकती है!

मेरे हर काम में नीरा को कोई चाल, कोई जाल दीखता। मैं अमुक पार्टी में क्यों गया; अमुक व्यक्ति मेरा मित्र क्यों है, अमुक क्षेत्र में मैं अधिक क्यों जाता हूँ—सभी बातों की तह में नीरा को केवल एक ही लक्ष्य दीखता और वह यह कि इन सभी जगह एक सुन्दर स्त्री अवश्य है, जो मेरी गति को नियन्त्रित कर रही है। मैं जितना ही प्रतिवाद करता, नीरा की धारणा उतनी ही दृढ़ होती जाती।

प्रतिवाद के अतिरिक्त मैं अपने व्यवहार से भी भरसक प्रयत्न करता कि नीरा को अकारण संदेह का कारण न मिल सके। नीरा से वार्तालाप करने में मैं कभी किसी स्त्री की बात मुँह पर न लाता। यदि उसकी कोई सखी मिलने आती, तो मैं कभी भूलकर भी उस ओर से नहीं निकलता। लेकिन जब इस सबको भी ढोंग की संज्ञा दी जाती है, तो मुझे झुँझलाहट लगती है कि आखिर क्या करूँ?

इधर हाल ही में कंपनी ने बिजनेस बढ़ाने की दृष्टि से नई योजना आरम्भ की है और वह यह कि लेडी एजेण्ट भी बनाई जायें। पञ्जाब से आई शरणार्थी लड़कियों में से अनेक लेडी एजेण्ट बनी हैं और बड़ी तत्परता तथा लगन से काम करती हैं। नीरा से जब मैंने इस योजना की चर्चा की तो उसने मुँह बना कर कहा, 'तब तो तुम्हारे और भी मजे आ गये।'

मैंने भी उसी चिढ़े लहजे में उत्तर दिया, 'मजे आ गये या शामत आ गई कि अब तुम्हें छींटे उछालने को एक और साधन मिल गया?'

फिर कुछ दिन बाद ही नीरा ने अपने शब्दों में मुझे रंगे हाथों भी पकड़ लिया। एक दिन दोपहर को टेलीफोन की

घण्टी सुन कर नीरा ने रिसीवर कान से लगाया, तो उधर से किसी लड़की ने पूछा : 'खन्ना जी हैं क्या ?'

नीरा ने पूछा, 'आप पहले बताइये कि हैं कौन ?'

उत्तर मिला, 'मेरा नाम सुरजीतकौर है ।'

यह पूछने पर कि खन्नाजी से क्या काम है, उसने कह दिया कि काम उन्हीं से है, फिर देखा जायगा ।

शाम को जब मैं लौटा तो कुरुक्षेत्र तैयार था । सारी घटना मुझे सुना कर पूछा गया कि आखिर ऐसा क्या काम था, जो मुझे नहीं बता सकती थी ? इस तरह से बात करने का और क्या मतलब हो सकता है ? मैने बहुत कहा कि ये लड़कियां बीमे के काम में बिलकुल नई हैं और उसी सम्बन्ध में अपनी किसी दिक्कत को पूछना चाहती होंगी, नहीं तो और भला मुझ से क्या काम हो सकता था ! लेकिन मेरा तो हर शब्द झूठ और फरेब से भरा होता है और बीमे का काम करके इस विद्या में पूर्ण पारंगत हो चुका हूँ । बहुत ऊँचनीच समझाया । 'बच्चे समझदार हो रहे हैं, इस कोहराम से उन पर क्या प्रभाव पड़ेगा, नौकर लोग क्या सोचते होंगे, आखिर ऐसा क्या होगया कि अब मेरी किसी बात पर रत्ती भर भी विश्वास नहीं ?' लेकिन सब निष्फल । जो खुराफ़ात दिमाग़ में भर गई है, वह निकलना ही नहीं चाहती ।

एक दिन मैंने नीरा से कहा कि कुछ दिनों को रिश्तेदारियों में घूम आओ, तो शायद तुम्हारे दिमाग़ का कीड़ा निकल जाय और कुछ स्वस्थ हो जाओ, परन्तु मेरे इस प्रस्ताव का भी अर्थ लगाया गया कि मैं नीरा को इसलिये टालना चाहता हूँ कि मेरी स्वच्छन्दता में बिलकुल भी बाधा न रहे और मैं बेरोकटोक रंगरेलियां मनाऊँ ।

मै अपनी दुबलता भी बता दूँ । एक बात अवश्य है कि ज्यों ज्यों नीरा का संदेह दृढ़ से दृढ़तर होता जाता है, त्यों-त्यों मुझे भी यही अच्छा लगता कि अधिक से अधिक समय

मैं उससे दूर रहूँ । नीरा के निकट होने पर भी मैं उसे प्यार नहीं कर पाता, क्योंकि एकदम मस्तिष्क में एक उद्वेलन सा होने लगता है कि यह मुझ से घृणा करती है, मुझे पतित समझती है, मुझ पर सन्देह करती है । चाहने पर भी फिर तदात्मयता नहीं हो पाती । यद्यपि यह सोचता जाता हूँ कि इससे समस्या जटिल ही होती जाती है और खाई बढ़ती ही जाती है, परन्तु एक विवशता सी छाई रहती है । लाख चाहने पर भी अपने कृत्यों में वह स्वाभाविकता मैं नहीं ला पाता शायद जिसकी अपेक्षा नीरा को है ।

एक बात पर मैं दृढ़ प्रतिज्ञ हूँ । नीरा के लाख सन्देहों के होते हुये भी मैं उसके प्रति विश्वासघात नहीं कर सकता । इतना मैं नहीं गिर सकता खाली क्षणों में कभी कभी काफी यह इच्छा होती है कि कोई प्यार से बोले । काम की बातों के अतिरिक्त जीवन के अधिक चिरंतन सत्यों का उल्लेख हो । लेकिन जब यह नहीं हो पाता, तो मन करता है कि इससे अच्छा तो यही है कि हर समय काम करो—इतना काम कि चूर होकर गिर पड़ो, जैसे जबरदस्ती रोके हुये बैल फुफकारते हुये आगे बढ़ने की चेष्टा करते हैं । कोई शांत क्षण जीवन में आने ही न पाये, जब कोई मधुर अथवा कोमल भावना अंकुरित हो । हर समय झुलसाती हुई लू ही चलती रहे ।

कभी कभी लगता है कि अकारथ जीवन एक निर्जीव हिरन की भांति किसी मोटर के पीछे बँधा घिसटता जा रहा है । इतनी अदृश्य दीवारें उठ चुकी हैं और नित्य उठती जा रही हैं कि चन्द्रिका की झांई ओझल होती जा रही है । लेकिन फिर भी यह पागल सा विश्वास दीपक की लौ की भांति उचक उचक पड़ता है कि शायद एक तूफ़ान आये, जो इन अदृश्य दीवारों को बहा ले जाये और पूर्णिमा की राका पुनः दृष्टिगोचर हो सके । उस तूफ़ान की प्रतीक्षा में निर्जीव घिसटने में भी बड़ा आनन्द प्राप्त हो रहा है ।

अजय शिखर

क्या आपने कभी अपने बन्द कमरे में रबड़ की गेंद को किसी दीवार पर जोर से मारकर देखा है कि क्या होता है ? गेंद कुछ देर तक कमरे की दीवारों से टक्कर ले लेकर अन्त में शिथिल होकर एक कोने में स्थिर हो जाती है। मेरे मस्तिष्क की भी कुछ-कुछ यही दशा है। गेंद की भांति ही मेरे विचार मस्तिष्क में टक्करें मारने के उपरान्त जड़ हो जाते हैं और मैं अपने को निपट निश्चेष्ट और संज्ञाहीन अनुभव करने लगती हूँ। मेरे दिमाग में उठते तूफान को कोई दिशा नहीं मिलती, कोई राह नहीं सूझती और बरसात की उमसपूर्ण संध्या के समान उसमें गुबार भरा रहता है। मुझे भय है किसी दिन विस्फोट न हो जाय।

आप कहेंगे कि यह मानसिक बीमारी है। मानसिक ही सही, लेकिन है बीमारी—यह आप मानते हैं। और बीमारी का स्वास्थ्य पर प्रभाव पड़ता ही है। मेरे पहले और आज के स्वास्थ्य में कितना महान अन्तर हो गया है ! कॉलेज के दिनों में मेरे गाल पके टमाटर की तरह लाल थे, जिनको छूते ही खून बरसने लगता था। और वह नटखट कीर्ति ! उसके हौसले सबसे अधिक बढ़े हुये थे। दिन में कम-से-कम एक बार तो वह मेरे गालों की चुटकी लेने से बाज नहीं आती थी। और मेरे अप्रसन्न होने पर सब लड़कियों को मेरे गाल दिखाती हुई कहती थी, 'क्यों जी, इसके गालों पर जो लाल धनुष बन गया है, क्या वह तुम्हें अच्छा नहीं लगता ? मैं तो इसे देखने के लिये इसकी नाराजगी की भी चिंता नहीं करती।'

अब वह दिन कहां ! न जाने वह शैतान भी अब कहां होगी ! जीवन नदी न जाने कितने कगारों को छूती हुई बहती है, लेकिन वह लाली कहां गई ? अब स्नान के उपरान्त तौलिये से काफ़ी देर तक गाल रगड़ने पर भी केवल तनिक सी लाल झांई दे जाते हैं। लगता है कि वह लाली तो सदा के लिये विदा हो गई है।

कभी सोचती हूँ मुझे कुछ दुःख है। लेकिन कहां ? खाने-पहिनने नौकर-चाकर—सभी का तो आराम है। किसी भी इच्छा पर कुछ बन्धन नहीं। मेरे पति की कोई प्रेयसी भी नहीं, जो मेरे क्लेश का कारण बने। फिर कैसे कहूँ कि मुझे दुःख है ? लेकिन अब गाल वैसे लाल नहीं रहे। बुढ़ापा भी अभी नहीं आया है, जो उसके सिर दोष मढ़ दूँ। फिर भी शादी से यह परिवर्तन तो नहीं होना चाहिये था।

मेरी शादी—ओह, मुझे अच्छी तरह से याद है, शायद प्रीवियस में थी जब मेरी शादी पक्की हुई थी। बी० ए० पास कर लेने के बाद पिताजी को अपना भार शीघ्र से शीघ्र उतारने की चिंता हुई थी। शादी तय हो जाने पर मुझे बुरा नहीं लगा था। और मैं दावे के साथ कह सकती हूँ कि किसी भी लड़की को अपनी शादी निश्चित हो जाने से बुरा नहीं लगता। अपने भावी पति के विषय में मैंने सुना था कि वह डॉक्टर हैं—चीरफाड़ के डॉक्टर नहीं, विज्ञान के डाक्टर, वनस्पति विज्ञान के; और किसी कॉलेज में प्रोफेसर थे। लोग कहते थे कि होनहार व्यक्ति हैं।

इन सब बातों से मुझे कुछ अव्यक्त आनन्द मालूम होता था। मुझे ऐसा लगता था कि मुझे कोई छेड़े और मैं चिढ़ूं। और जब मेरी छोटी बहिन शील मुझ से शादी की बात कहकर तङ्ग करती थी, तो यद्यपि मैं उससे चिढ़ने लगती थी और धमकाती हुई कहती भी थी कि नहीं मानेगी तो मां से

शिकायत कर दूँगी, लेकिन सच कहती हूँ कि यह सब केवल दिखाने के लिये होता था। वास्तव में मुझे उसके छेड़ने से आन्तरिक आनन्द होता था, वह किस प्रकार का आनन्द होता था, मैं ठीक से वर्णन नहीं कर सकती। बैठे-बिठाए मुझे लगता था कि जैसे कोई मुझे देख रहा हो और मैं कुछ सिमट जाती थी या उसका अभिनय करती थी। फिर किसी को मुझे देखते न पाकर मैं दौड़ कर शील को पकड़ लाती और उसे झकझोरती हुई कहती, 'शील, मुझे देख।'

'वह खूब जोर से हँसती हुई कहती, 'क्या देखूं तुम्हें ? क्या कुछ बदल गई हो ? कुछ विशेष पहने भी तो नहीं हो। फिर क्या दिखा रही हो मुझे ?' और शील कूदती हुई बाहर भाग जाती। ड्रेसिंग टेबिल के लम्बे आइने के सामने शृङ्गार करती हुई मैं मुस्करा देती और शीशे में देखकर मुझे लगता कि मैं नहीं, कोई और मुस्करा रहा है।

इस तरह की कुछ और बातें मां के द्वारा पिताजी के कान तक भी पहुँच गई थीं, लेकिन वे हँसकर मां को टाल देते, 'शादी होने पर सब ठीक हो जायगा। तुम बेकार परेशान होती हो।'

सारा घर उनकी प्रशंसा के पुल बाँधा करता था। पिताजी मां से कहते, 'इतना भोला और सीधा लड़का मैंने नहीं देखा। उस दिन मैं उसके कालेज गया था उसके विभाग के जो हैड हैं, वह सुना रहे थे कि एक दिन घंटा बज गया, क्लास आई और चली भी गई, लेकिन आप अपने कमरे में बैठे पढ़ते ही रहे। जब नौकर ने आकर कहा कि डॉक्टर साहब आपकी क्लास आई थी और चली भी गई, तो बोले कि तुमने मुझे बताया क्यों नहीं ? उस दिन से एक नौकर उन्हें उनकी क्लास में पहुँचा आता है। न जाने किस धुन में रहता है कि हफ़्तों बीत

जाते हैं, लेकिन कमीज़ बदलने का नाम नहीं लेता। ऐसे आदमी की शादी तो और भी जरूरी है।'

मैं यह सब छिपकर सुनती और आनन्द विह्वल हो जाती। शील कभी सुनाती, 'दीदी, कल जब जीजाजी आये थे न, तो नाश्ते के वक्त मैंने बड़ा रसगुल्ला उठाकर कहा कि पूरा का पूरा मुंह में दूँगी उन्होंने मुंह फाड़ दिया और बड़ी मुश्किल से मैंने उस पूरे रसगुल्ले को ठूंस पाया, लेकिन वह सब खा गये। पिताजी और मैं खूब हँसे। बड़ा मजा आया। सच बड़े अच्छे हैं हमारे जीजाजी।'

मैं शील के हलकी सी चपत लगाकर भगा देती और न जाने किन विचारों में डूब जाती। मुझे उनकी बेवक़ूफियों पर गुस्सा नहीं आता, बड़ा आनन्द लगता था। न जाने क्यों? लेकिन ये शादी होने से पहले की बातें हैं।

खैर, फिर शादी हुई। मुझे एक-एक बात इस तरह याद है जैसे कल ही मेरी शादी हुई हो। और फिर शादी हुये अभी दिन ही कितने हुये हैं—कुल दो ढाई वर्ष। इतने काल में यह सम्भव नहीं कि समय की गर्द पड़ने से चमकती हुई स्मृतियां धुंधली पड़ जाएं। इसके अतिरिक्त और कोई रोग चाहे मुझे भले ही हो, स्मृति विभ्रम का रोग मुझे नहीं है। शादी में तो केवल कुछ ही दिन के लिये उनके पास रही थी, लेकिन उसके बाद से तो लगभग डेढ़ वर्ष से हम लोग बराबर साथ ही हैं।

लेकिन इतने थोड़े समय में ही मेरे चेहरे का रंग उड़ जाने पर सभी आश्चर्य करते हैं और मैं स्वयं भी आश्चर्य करती हूं। लेकिन कोई कारण नहीं बता पाती। हर कोई कहता है कि शादी हो जाने के बाद से मुझमें ज़मीन आसमान का अन्तर हो गया है। चंचलता जाने कहां खो गई और मेरे बढ़ते हुये गांभीर्य से पिताजी भी चिंतित हैं। शील तो बात बात पर कह देती है, 'दीदी की शादी क्या हो गई, वह तो बिलकुल

बुढ़िया हो गई हैं।' मै स्वयं अनुभव करती हूं कि मुझे अब किसी भी कार्य में उत्साह प्रतीत नहीं होता—जैसे सब कुछ यंत्रवत हो, उसमें जीवन का अवशेष न रहा हो।

जैसा कि मैं पहले ही कह चुकी हूं मुझे कोई दुःख नहीं है। उनको तीन सौ रुपये मिलते हैं, जो हम दो लोगों के लिये अधिक नहीं, तो काफ़ी तो हैं ही। फिर और कोई झंझट भी नहीं है। सास नहीं, नन्द नहीं—केवल मात्र दो प्राणी। नौकर भी है। कुछ काम भी मुझे नहीं करना पड़ता। कुछ ऐसी जिम्मेदारियां भी मेरे ऊपर नहीं आ पड़ी हैं, जिन से असमय में ही मुझ में पुरखापन आ जाये। बहुत टटोलती हूं, लेकिन गांठ पकड़ में नहीं आती। ऐसी छोटी-मोटी बातें तो पचासों हुआ करती हैं, परन्तु उनसे क्या? फिर भी लोग कहते हैं कि लड़की घुली जा रही है। लड़के में भी कुछ ऐब नहीं दिखाई देता। निहायत सज्जन है। और मैं इन दोनों में से किसी बात का भी प्रतिवाद नहीं कर सकती।

विवाह से पूर्व मैंने कुछ स्वप्न रचे थे अपने भावी विवाहित जीवन के सम्बन्ध में। मैं समझती हूं कि मैंने इसमें कोई गलती नहीं की। सम्भवतः प्रत्येक विचारशील लड़की ऐसा ही करती है। स्वप्नों की पूर्ति पर आह्लाद और उनके अवसान पर अवसाद सभी को होता है। मैं जब मुड़कर पीछे की ओर देखती हूं तो दो वर्ष पुराने विवाहित जीवन की अनेक कड़ुवी मीठी स्मृतियां हरी हो जाती हैं और मैं विवश उनमें अपनी घनीभूत उदासीनता का कारण खोजने लगती हूं।

कॉलेज में इनको बहुत अधिक काम नहीं करना पड़ता। नित्य दो या तीन घण्टे ही पढ़ाना पड़ता है। परन्तु आप कॉलेज से लौटते हैं दिन छिपने पर। पहले तो मै समझती थी कि आखिर एकाकी व्यक्ति करे भी क्या? इसलिये वहीं पर उलझे रहते हैं। लेकिन मेरे आ जाने के बाद भी उनका यही

क्रम चलता रहा। मैंने सोचा शायद पुरानी आदत है। कुछ समय लगेगा उसे छोड़ने में। लेकिन जब मैंने कोई परिवर्तन न देखा तो एक दिन कहा ही, 'मुझसे शाम को अकेले चाय नहीं पी जाती।'

'अच्छा, तो मैं चार बजे आ जाया करूंगा,' अत्यन्त मधुर वाणी थी। मैं निहाल हो गई। तीन चार दिन तो खैर आये, परन्तु फिर वही ढर्रा। मैं अब बार-बार क्या कहूं? किसी-किसी दिन तड़के ही कालेज चले जाते हैं। दोपहर को भागे हुये किसी दिन खाना खाने आ गये तो बड़े भाग्य, अन्यथा जब मैं देख लूं कि एक बज गया है और अभी तक नहीं आये हैं, तो नौकर के हाथों खाना कॉलेज ही भेज देती हूं। और उसके बाद कितने दिन मैंने दोपहर को भोजन नहीं किया—मुझे तो याद नहीं।

कितने ही दिन जब नित्य सुबह कालेज जाने का क्रम जारी रहा, तो कुछ दिन बाद मुझे बड़े साहस के साथ सामने आना ही पड़ा। एक दिन मैंने अपनी दोनों बाहों में उनकी कमर भरकर कहा, 'रोज इतनी जल्दी चले जाते हो, आज नहीं जाने दूंगी।'

बंधन मुक्त हो मेरे दोनों हाथों को अपने हाथों में थाम कर वह घबराये हुये से बोले, 'आज तो जाने दो, बीनू, नहीं तो एक महीने का सारा काम चौपट हो जायगा।' और वह चले ही तो गये। मेरी फैली बांहें भी उन्हें न रोक सकीं। उस दिन मैं कितनी देर तक रोती रही—किसे पता? जाने कौन सा काम था जिसकी उन्हें चिंता थी?

शादी के बाद मैं तीन या चार महीने ही अपने पिताजी के पास रही थी। नई शादी थी। मुझे याद है मैं प्रायः नित्य ही इनको पत्र लिखती थी, लेकिन इनके पत्र शायद आठ-दस से अधिक नहीं थे। और पत्र भी ऐसे, जिनको देखने पर पता

ही नहीं होता था कि लिफाफे के अन्दर कोई कागज भी है। मेरी सहेलियां ताना देती हुई पूछती थीं, 'आजकल तो रोज डाक आती होगी। उसी डाक के ध्यान में तो डूबी रहती हो।' मैं एक हलकी सी मुस्कराहट से इसका उत्तर देती। और कहती भी तो क्या ?

गरमी, सर्दी, बरसात—कोई भी ऋतु क्यों न हो, आप मशीन की तरह ठीक पांच बजे उठ जायेंगे और छः बजे तक सब आवश्यक कामों से निबट कर अपने स्टडी रूम में जा धमकेंगे। पांच बजे के बाद से फिर मुझे भला कहीं नींद आती है! अलसाई हुई चाहे पड़ी भले ही सात बजे तक रहूं। यदि मै किसी दिन कहूँ भी कि इतनी जल्दी क्यों उठ जाते हो, ऐसी क्या आफत है, तो संयत स्वर में तुरन्त उत्तर मिलता, 'बेकार ऊंघते हुये पड़े रहने से क्या लाभ ? जब नींद पूरी हो चुकी तो उठ जाना चाहिये।' बात बिलकुल सच है, लेकिन कितनी निर्मम !

इतने दिनों साथ रहने पर भी मैं यह न जान सकी कि इस व्यक्ति को खाने में क्या चीज पसन्द है और क्या नहीं। मुझे खूब याद है कि मैंने एक बार भी उनके मुँह से यह नहीं सुना कि अमुक वस्तु अच्छी बनी है, और अमुक खराब। मैं दहीबड़े बहुत अच्छे बनाती हूँ, क्योंकि जिस किसी ने भी उनको खाया, वह उंगली चाट कर रह गया और तारीफ करते करते न अघाया। एक दिन मैंने अपनी सम्पूर्ण कला को जागृत कर दहीबड़े बनाये। दहीबड़े ही क्या, सारी ही चीजें बनाई थीं। नौकर को अलग बैठा दिया था। शाम को जब खाना खाने बैठे, तो मैं बराबर उनके मुँह की ओर देखती रही कि मुखारविन्द से कोई हिमकण झड़े। लेकिन व्यर्थ। अत्यन्त ध्यान से देखने पर भी मैं उनके मुख पर ऐसा कोई भाव न पा सकी, जिससे मुझे सन्तोष होता। केवल एक बार, 'बहुत

अच्छे बने हैं,' सुनने के लिये मैं तरस तरस कर रह गई। मैंने आज तक कभी यह नहीं देखा कि उन्होंने आग्रह क्या, साधारण रूप से भी कहा हो कि आज यह बनवा लो। कितने नीरस और निर्लिप्त भाव से उनका भोजन होता है !

मधु इनके कालेज में ही पढ़ती है। उसकी क्लास को यह भी पढ़ाते हैं। मुझ से भी जान पहिचान है, क्योंकि हमारे घर से चौथे घर में ही तो वह रहती है। एक दिन दोपहर को यों ही चली आई। बात चली तो कहीं और से थी लेकिन जाने कैसे इन्हीं पर आ गई। वह मुग्ध होकर कहने लगी, 'बहुत से प्रोफेसरों से पढ़ी हूँ, लेकिन डाक्टर साहब की टक्टर का कोई नहीं देखा। पढ़ाते हैं तो ऐसा लगता है जैसे कोई जादू के पट पर पट खोलता चला जा रहा हो। सारी क्लास मन्त्र मुग्ध सी सुनती रहती है, जैसे कोई दैवी संदेश सुन रही हो। सुनते सुनते लगता है जैसे इस व्यक्ति के मस्तिष्क में एक बड़े पुस्तकालय की पुस्तकें अत्यन्त व्यवस्थित ढङ्ग से चुनी रखी हों।'

मधु अपनी धुन में और भी न जाने क्या क्या कहती चली जाती, परन्तु मेरी मुस्कराहट को देख कर तनिक झेंप कर चुप हो गई। मैंने बहुत कहा कि तुम कहे जाओ, लेकिन फिर उससे कुछ कहा ही नहीं गया वास्तव में मुझे उसकी अलंकृत प्रशंसा बड़ी अच्छी लग रही थी। मैं सोच रही थी कि मैं कैसी भाग्यवान हूं जो ऐसे विद्वान व्यक्ति की निकटतम साथी हूँ। मैं मन ही मन सोच रही थी, जिस मस्तिष्क की मधु इतनी प्रशंसा कर रही है वह मेरे कितने निकट है, उसे मैं कितनी बार अपने वक्ष पर रख कर स्नेह से दबा चुकी हूँ। मधु कहती है कि उसमें एक पुस्तकालय भरा हुआ है। लेकिन मुझे तो वह सिर तनिक भी भारी नहीं लगता। घण्टों मैं

उसे अपने वक्ष पर रख सकती हूँ। झूठी मधु, उसे क्या पता कि वह सिर कितना हलका है।

इस एक घटना से मैं उस दिन क्या, कई दिन तक बड़ी प्रफुल्लित रही। लेकिन कोई ऐसा साधन न हो सका जिसके द्वारा यह प्रफुल्लता चिरस्थायी हो सकती।

जब तबियत काफ़ी गिरी गिरी सी रहने लगी, तो एक दिन मैंने उन से कहा, 'मेरा स्वास्थ्य काफी बिगड़ गया है। हर समय तबियत गिरी हुई सी रहती है।'

'चलो, किसी डाक्टर को दिखा दो,' उन्होंने उत्तर दिया।

'दिखाऊँ क्या ? रोग तो कोई विशेष मालूम नहीं देता।

'तो फिर रोज़ सुबह शाम घूम आया करो। इतनी तो तुम्हारी पड़ोसिनें हैं। मधु, कौशल आदि सभी सुबह घूमने जाती हैं, तुम भी घूम आया करो।'

मैंने कोई उत्तर नहीं दिया। उत्तर भी क्या देती ? होगा भी क्या स्वास्थ्य सुधार कर ? अच्छा है यदि शीघ्र ही जीवन समाप्त हो जाये। परन्तु मुझे बचपन से ही जीने की जो उद्दाम लालसा है वह क्षीण होकर भी अभी पूर्णतया लुप्त नहीं हुई थी। नितान्त मैंने घूमने जाना आरम्भ कर दिया। लेकिन अभी जाते हुये कुछ ही दिन हुये थे कि एक दिन प्रात: जब मैं मधु के साथ कम्पनी बाग से लौट रही थी तो माल रोड पर एक दम्पति जाते हुये मिले। न जाने उनमें क्या था कि मेरा हृदय एकदम रो पड़ा। मुझे वे हँसते हुये गुलाब के फूल से भी अधिक प्रसन्न और भोर की चहचहाती हुई चिड़ियों से भी अधिक आनन्दित प्रतीत हुये। मैं रास्ते भर चुप ही लौटी। मधु ने लक्ष्य कर के टोका भी।

दूसरे दिन से मैंने घूमने जाना बन्द कर दिया। उन्होंने शायद पूछा भी नहीं कि अब मैं क्यों घूमने नहीं जाती। सम्भवत: इस पर उनका ध्यान भी न गया हो। इसमें उनका कुछ दोष नहीं। लेकिन फिर मैं क्या करूँ?

कुछ छिपाती नहीं, मैं अपने मन का पाप बता रही हूँ। उनका कालेज के प्रति ऐसा प्रेम देखकर मेरे मन में पाप जागा कि कहीं इस कॉलेज और काम की आड़ में कुछ और लीला तो नहीं होती। यद्यपि मेरे ऐसा सोचने के लिये कोई कारण न था, फिर भी न जाने कैसे यह भूत मेरे मस्तिष्क में आ जमा। नहीं तो भला फिर मेरे प्रति इस उपेक्षा का क्या कारण हो सकता है?

मन ने जब बहुत उत्पात मचाया तो एक दिन शाम को मैं उनके कॉलेज जा पहुँची। केवल एक कमरा खुला था। मैं चिक उठा कर बेधड़क अन्दर चली गई। परन्तु यह क्या? वहाँ तो वह बिलकुल अकेले एक ऊँची मेज़ के पास खड़े अनुवीक्षण यन्त्र पर झुके कुछ देखने में तन्मय थे। गर्दन से पसीना बह रहा था और पीठ पर कमीज़ पसीने में बिलकुल तर थी। कोट दूर एक कोने में खूँटी पर टंगा था। कुछ देर तो मैं समझ ही न सकी कि क्या करूँ? अन्त में मैंने एक पुट्ठा उठाकर उनकी पीठ पर हवा करना शुरू किया। सिर उठा कर मेरी ओर देख हँसते हुये बोले, 'ओह, बीनू, तुम? कितनी अच्छी हो!'

उस क्षण मुझे कितना आनन्द मिला, मैं वर्णन नहीं कर सकती। मैं उस समय यही सोच रही थी कि ऐसी मुस्कराहट इनके मुख पर हमेशा क्यों नहीं रहती? रहे तो मेरा जीवन कितका उल्लासमय हो जाये। उफ़, मैं कितनी नीच हूँ जो इस व्यक्ति के प्रति दुर्भावना जागृत की।

'क्या देख रहे हो?' मैंने कुछ प्रकृतिस्थ हो कर पूछा।

'आओ, तुम भी देखो', कह कर उन्होंने मेरे सिर को अनुवीक्षण यन्त्र पर झुका दिया। मुझे विचित्र-सा लगा। मैं अपना सिर हटाना ही चाहती थी कि उन्होंने कहा, 'देखो, ध्यान से देखो। एक छोटी झिल्ली-सी हिलती हुई दिखाई देती है न ? यह एक पत्ती की झिल्ली है। इसी का हिलना तो मैं देख रहा था।'

मैंने उस झिल्ली को हिलते हुये देखा। मैं सोच रही थी यह कैसा व्यक्ति है, जो एक पत्ती की झिल्ली का हिलना तो देखता है, परन्तु एक जीवित व्यक्ति के हृदय के परदों का हिलना नहीं देख सकता ? इसे दृष्टि की सूक्ष्मता कहूं या स्थूलता ?

मुझे रह-रहकर अपने ऊपर बड़ी ग्लानि हो रही थी कि मैंने उनके प्रति ऐसी बात सोची ही क्यों ? उस दिन फिर हम दोनों प्रयोगशाला से साथ ही लौटे। रास्ते भर वह अपने झिल्ली के काम के विषय में ही बात करते आये। कुछ तो मैं समझी, परन्तु अधिकांश में 'हां हूं' करती रही, क्योंकि मुझे कोई रस नहीं आ रहा था।

मेरी मां को मुझ से सख्त शिकायत है कि मैं अपने श्रृङ्गार के प्रति बड़ी लापरवा हूं। उनका कहना है कि यही तो खाने-पहनने के दिन हैं, फिर क्या भला कोई बुढ़ापे में शौक़ करता है ? परन्तु मैं उन्हें अपनी बात क्योंकर समझाऊं ? आखिर मैं श्रृङ्गार किसके लिये करूं ? जिसके लिये किया जाता है उसके लिये तो गुड़ गोबर—सब एक समान है।

उस दिन एक निमंत्रण में जाना था। मैंने पूछा, 'क्या पहन कर चलूं ?'

'चाहे कुछ पहन लो।' सदा की भांति उनका उत्तर था। मुझे लगा जैसे मेरे ऊपर ढेर-सा बरफ़ उंडेल दिया गया हो।

अभी कोई एक महीना हुआ होगा। वह अपने नियम के अनुसार प्रातः उठकर अपने स्टडी रूम में पहुंच चुके थे। मुझे नींद न आई तो मैं भी उठ गई और बाहर बगीचे में निकल गई। लेकिन वहां पर भी मन नहीं लगा। मुझे किसी से बातें करने की प्रबल इच्छा हो रही थी। अतएव उनके स्टडी रूम का परदा उठाकर अन्दर चली गई। वह कुछ लिखने में व्यस्त थे। सामने देखकर निर्लिप्त भाव से बोले, 'बैठो।'

मुझे उनकी मेज पर एक आकर्षक लिफ़ाफ़ा दीख पड़ा। लिफ़ाफ़े का चिकना कागज और उस पर लगी हलकी नीली मुहर—दोनों ही मेरे लिये नई चीजें थीं। मैंने पूछा, 'यह किसका पत्र है?'

'देख लो न।'

मैंने लिफ़ाफ़ा उठाकर पत्र निकाल लिया। पत्र अमेरिका के किसी वैज्ञानिक का था। इनके काम की बड़ी प्रशंसा करते हुये उसने साधुवाद दिया था और बहुत उज्ज्वल भविष्य की भविष्यवाणी करते हुये कुछ प्रश्न पूछे थे।

'यह कौन है?' मेरा प्रश्न था।

'अमेरिका के वनस्पति विज्ञान के प्रमुख वैज्ञानिक हैं।'

पत्र को पढ़कर मुझे लग रहा था जैसे मैं हवा में उड़ी जा रही हूँ। अमेरिका के वैज्ञानिक जिसकी इतनी प्रशंसा करते हैं, उससे मैं असन्तुष्ट हूँ। मुझे तो गर्व होना चाहिये था कि मैं ऐसे व्यक्ति की स्त्री हूँ जो किसी दिन संसार के प्रमुख वैज्ञानिकों में से होगा। कौन नारी ऐसे पति को पाकर अपना अहोभाग्य नहीं समझेगी? मैं कुछ बात करने को उद्धत थी। मैंने कहा, 'इसने तो बड़ी प्रशंसा की है।'

'वे लोग आदमी की क़द्र करना जानते हैं, तभी तो आज संसार के सिर पर बैठे हुये हैं।'

मैंने सोचा, कितनी महान् सच्चाई इन्होंने कही है। मेरा कितना दुर्भाग्य है कि इनके इतने निकट रहते हुये भी मैं इन्हें नहीं समझ पाती और समुद्र पार बैठे लोग, जिन्होंने कभी इनको देखा तक नहीं, इनका मूल्य निर्धारण कर रहे हैं।

उस दिन मुझे अपने ऊपर अत्यन्त क्रोध आता रहा। मैं मन ही मन यह संकल्प करने लगी कि उनके महान् कार्य में मुझे अधिक से अधिक सहायक होना चाहिये। उनकी महानता में कुछ अंश मेरा भी अवश्य होगा। गेहूँ के साथ बथुये को पानी सदैव लगता है।

लेकिन मेरी समझ में नहीं आता कि मेरी कौनसी विवशता है कि ये विचार अधिक दिन तक नहीं जम सके। कहां तक गिनूं ? ऐसी कटुमधुर स्मृतियां अनेक बिखरी पड़ी हैं। परन्तु मधुर अनुभव तो विस्तृत मरुस्थल में लघु ओसिसों के समान भर हैं।

मुझे ऐसा लगता है जैसे मुझे किसी बहुत ऊँचे गुम्बजदार घेरे में बन्द कर दिया गया हो और गुम्बज की छत पर खड़ा कोई मुझसे कह रहा हो, 'तुम ऊपर आ जाओ, मैं नीचे नहीं आ सकता।' उफ़, कैसे कहूँ कि मैं उस गुम्बज तक किसी प्रकार भी नहीं पहुँच सकती ! क्या करूं ? क्या दीवार से सिर फोड़ कर समाप्त हो जाऊँ ? (१५५८)

ज्योति-शिखा

हवा में गरमी है और वातावरण में कड़वाहट भरी हुई है, इसलिये नहीं कि गर्मी के दिन हैं, बल्कि इसलिये कि कुछ उभारने वाले भाषण बराबर जारी हैं, और अखबारों का धुँआधार प्रचार अवाध गति से चल रहा है। बंगाल, बिहार, पंजाब और सीमा-प्रान्त की खूनी घटनाओं ने कुछ लोगों के दिमाग खराब कर दिये हैं। वे अन्दर ही अन्दर बदले की भावना से जलते रहते हैं, और अवसर पाते ही भड़क उठते हैं।

दूसरे महायुद्ध के समय आम जनता में अखबारों से जो दिलचस्पी पैदा हो गई थी, वह अब भी ज्यों की त्यों वर्तमान है। अन्तर केवल इतना है, कि जहां लोग पहले यह देखने के लिये अख़बार उठाते थे, कि किस स्थान का मोर्चा कैसे चल रहा है, वहां अब लोग अख़बार में यह देखने के लिये उतावले रहते हैं, कि किस स्थान पर दंगा हो गया। आदमी को आदमी के रूप में देखने के लिये आज लोग तैयार नहीं हैं। आज लोग आदमी को हिन्दू या मुसलमान के रूप में देख रहे हैं। आज अगर कोई कहता है, कि हिन्दू-मुस्लिम भाई-भाई हैं, तो लोग उसकी ओर उपेक्षा से नाक भौं सिकोड़ लेते हैं।

यू० पी० का एक छोटा सा शहर है। किसी को याद नहीं कि, इस शहर में कभी भी साम्प्रदायिक दङ्गा हुआ। अब तक इस शहर के लोगों का विचार था, कि दंगे बड़े शहरों में होते हैं, जहां लाखों आदमी थोड़ी सी जगह में रहते हैं, जहां कितने ही गुण्डे और बदमाश रहते हैं। बड़े शहरों की

यह बीमारी उनके छोटे शहर में भी किसी दिन आ सकती है, ऐसा किसी ने कभी नहीं सोचा ।

यहां पर मिल और कारखाने नहीं हैं, बड़ी ऐतिहासिक इमारतें नहीं हैं, बड़े बाज़ार और पार्क भी नहीं हैं । कुछ थोड़े से दूकानदार, एक दो दफ्तर, एक छोटी सी कचहरी और ऐसी ही छोटी-मोटी चीजों को मिला कर यह छोटा सा शहर आबाद है । आबादी में हिन्दू भी हैं, और मुसलमान भी हैं । कौन संख्या में अधिक हैं, अभी तक यह जानने की किसी ने आवश्यकता ही न समझी । रामलीला और मुहर्रम के जुलूसों के अतिरिक्त और कोई जुलूस यहां के निवासियों ने नहीं देखा था । लेकिन पिछले चुनावों के सिलसिले में कुछ नेताओं के आगमन के उपलक्ष में कितने ही जुलूस यहां निकले । निवासियों की बहुत काफ़ी संख्या अब पाकिस्तान और अखंड हिन्दुस्तान चिल्लाने लगी है । दोनों का भेद तो अधिकांश निवासी नहीं जानते, लेकिन इतना अवश्य जानते हैं, कि एक से हिन्दू चिढ़ते हैं और दूसरे से मुसलमान ।

बंगाल, बिहार, पंजाब और सीमा-प्रान्त की नित्य समाचार-पत्रों में प्रकाशित होने वाली घटनाओं ने इस शहर में भी दंगे का अंदेशा बढ़ा दिया है । अधिकारियों को चिन्ता है, कि कहीं दंगा न हो जाय, झुटपुटे में चलता हुआ आदमी सोचता है, कि कहीं कोई पीछे से छुरा न घुसेड़ दे । दूकानदार जल्दी-जल्दी दूकान समेटने का प्रयत्न करता हुआ सोचता है, कि कहीं वह सबसे पीछे न रह जाय । यद्यपि अभी शहर में पूर्ण रूप से शान्ति है, फिर भी लोगों को भय है कि कहीं यह शान्ति तूफान आने के पहले की शान्ति का सन्नाटा न हो । पुलिस अधिकारियों के पास रिपोर्टें आ रही हैं कि शहर में बाहर से बराबर शस्त्र आ रहे हैं । मुसलमानी मोहल्लों में रहने वाले हिन्दू, हिन्दू मोहल्लों में मकान खोजते फिरते हैं,

और हिन्दू मोहल्ले के मुसलमान किसी मुसलमानी मुहल्ले में चले जाने की फिक्र में हैं।

उस दिन रात में पुल पर पहरे वाले सिपाही ने एक बिना रोशनी के ट्रक का चालान कर दिया, तो सुवह सारे शहर में अफवाह उड़ गई, कि रात को पुल पर एक ट्रक में बल्लम और छुरों से भरी कई पेटियां पकड़ी गईं। उसके बाद एक दिन सब्जी मण्डी में दो सांड़ लड़ गये, तो सारा बाज़ार चटपट कुछ मिनिटों में ही बन्द हो गया। हर एक कहता है कि हालत खराब है। झगड़ा किसी दिन भी हो सकता है। बस एक चिनगारी की जरूरत है। अधिकारियों ने दफा १४४ लगा दी है।

शाम का समय था। बाज़ार में चहल-पहल थी। दिन भर के थके-मांदे लोग शाम को जरा जी-बहलाव के लिए बाजार में ही निकल आते हैं। कोई पार्क यहां है नहीं। न कोई नदी या नहर ही है। फिर लोग कहाँ जायें तफरीह के लिये? पान और शरबत की दुकानों पर अच्छी रौनक आ जाती है इस वक्त। आमोद-प्रमोद के लिए निकले हुए लोगों के कारण शाम को बाजार में भीड़ कुछ बढ़ जाती है। आखिर सँकरी-सी ही तो सड़क है। लोगों की संख्या तनिक-सी बढ़ी, तो लगता है कि जैसे कोई जलूस जा रहा है।

एक विद्यार्थी साइकिल पर चला जा रहा था। भीड़ में तनिक साइकिल से उतर कर थोड़ी दूर पैदल ही चल ले, भला इतनी समझ इस उम्र में उसे कहाँ से आती? घन्टी अवश्य जोर-जोर से बजा रहा था, और उसकी साइकिल को रास्ता भी मिलता जा रहा था, लेकिन इतने में ही एक लड़का उसकी साइकिल के अगले पहिये से टकरा गया। चोट तो उसे कुछ अधिक नहीं लगी, लेकिन उसने छूटते ही ताव में कहा—'अन्धे हो? आदमी के ऊपर साइकिल चलाते हो?'

'और तू क्या बहरा है ? घन्टी बजा रहा था, सुना नहीं ?'—उसने भी साइकिल से उतर कर ईंट का जवाब पत्थर से दिया ।

संयोग की बात थी, कि शहर के दुर्भाग्य से इन दोनों लड़कों में से एक हिन्दू था और दूसरा मुसलमान । देखते-ही-देखते काफी भीड़ इकट्ठी हो गई, और उत्तर-प्रत्युत्तर की तेजी बराबर बढ़ती गई । फिर जाने किस डिग्री तक यह तेजी बढ़ी, कि मार-पीट की भी नौबत आ गई । लोगों में भगदड़ मच गई । दूकानदारों ने फटाफट दुकानें बन्द कर अपने घरों की राह ली । कुछ लोगों के चोटें भी आईं । थोड़ी देर में पुलिस की लारी भी आ गई । लेकिन चिनगारी लग चुकी थी । शहर में दंगा हो गया । पुलिस ने धर-पकड़ आरम्भ कर दी । कुछ मुहल्लों से आग लगाने के समाचार भी आने लगे । निर्जन सड़कों पर अफवाहें पंख पसार कर स्वच्छन्द उड़ने लगीं । दो स्थानों पर भीड़ को तितर-बितर करने के लिए पुलिस ने गोली भी चला दी । तूफान आ गया है, ज्वालामुखी फट चुका है । लोग संत्रस्त घरों में दुबके बैठे हैं । गुण्डों ने लूट-पाट मचा रखी है । धर्म और मजहब की दुहाई दे-दे कर वे सीधे-सादे नागरिकों के रक्त की गति तीव्र कर रहे हैं । कलक्टर ने तुरन्त फौजी दस्ता भेजने के लिए फोन कर दिया है ।

रात आने में देर न लगी । रात्रि की नीरवता में 'अल्ला हो अकबर' और 'हर-हर-महादेव' के नारों को सुन कर दुबके बैठे हुए बालकों और स्त्रियों के कलेजे धक करके रह जाते हैं । सारे शहर में करफ्यू लगा हुआ है । घर से बाहर निकलते ही पुलिस की गोली लग सकती है । परस्पर विरोधी नारों के भीषण घोष के बाद सड़क की ईंटों पर पुलिस के घोड़ों की टापों और फौजियों के जूतों की कर्ण-कटु आवाज सुनाई देती

है । ऐसा लगता है, जैसे श्मशान में भूत-प्रेत विचरण कर रहे हों ।

दिन में भी शहर की हालत सुधर न सकी । स्थानीय अफसरों की मुस्तैदी के बावजूद भी कुछ मामले हो ही गये । दिन में एक घन्टे के लिए भी करफ्यू नहीं हटाया गया । लोग जोश पर हैं । आसानी से शान्त होना जरा मुश्किल है । इसी दिन के लिए तो बड़ी मुद्दत से तैयारियां की जा रही थीं । आज दिल के अरमान निकालने का अवसर आया है । भयानक खबरें आ रही हैं—

'शेख वाली मस्जिद में आग लगा दी गई !'

'चार हिन्दू औरतों को मुसलमान भगा ले गये !'

'दो बच्चे टाँग चीर कर मार डाले गये !'

'लाशें नालियों में पड़ी हैं !'

'सराफे की दो दुकानें लुट गईं !'

'गलियों में लाशों को उठाने वाला तक कोई नहीं है !'

'फौज बुलाई गई है । पुलिस निष्पक्षता से काम नहीं कर रही है !'

यह सब कब तक होगा ? इसका कब अन्त होगा ? उफ, कैसा समय आ गया है !

लोग चाहे मानवों की तरह रहें, चाहे राक्षसों की तरह । दिन और रात का क्रम तो चलता ही रहता है । अँधियारी रात वैसे भी अच्छी नहीं लगती, परन्तु ऐसे दिनों में वह और भी अधिक भयावह हो जाती है । लोग चाहते हैं, कि रात न हो और जब रात आ जाती है, तो मनाते हैं कि किसी प्रकार शीघ्र ही दिन हो जाय ।

रात हो चुकी है । शहर में छाये मौत के सन्नाटे को फौजियों के बूटों की 'कट-कट' ध्वनि बेध रही है । सदर

सड़क से एक सँकरी-सी गली अन्दर की ओर चली जाती है। गली में रोशनी की व्यवस्था भी नहीं है। फौज का पहरा भी खास-खास सड़कों पर ही है। गलियों में तो किसी विशेष आहट के पाने पर ही उनका ध्यान जाता है।

इसी समय बूढ़ी अमीरन के दरवाजे पर किसी ने हल्के-से अँगुली से तीन बार 'टक-टक-टक' की। ऐसे संकट के समय में प्रत्येक व्यक्ति के कान खरगोश के कानों से भी अधिक चौकन्ने हो जाते हैं। अमीरन ने आवाज सुनी जरूर, लेकिन चुप रही।

दरवाजे पर खड़े और अँधेरे में अपने को छिपाते हुये व्यक्ति ने पुनः 'टक-टक' की।

इस बार अमीरन अल्लाह का नाम लेकर उठ ही पड़ी। मन ही मन सोचा कि शायद कोई अपना आदमी हो, दरवाजे पर पहुँच कर उसने धीरे से पूछा—'कौन है ?'

उत्तर मिला—'खोल बुआ, मैं हूँ नरोत्तम।'

अमीरन सकपका गई। नरोत्तम के घर से उसका घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। वहां वह अभी तक परिवार की सदस्या की भांति ही आदर पाती रही है। लेकिन इस रात को उसी नरोत्तम के आने से उसका दिल कांप गया। वह सहमती हुई बोली—'क्या है, बेटा ?'

'बुआ, जल्दी खोलो ! कहीं किसी फौजी ने देख लिया, तो यहीं ढेर कर देगा !' गिड़गिड़ाकर नरोत्तम ने उत्तर दिया।

बुढ़िया कांप गई। कहीं पुलिस की गोली नरोत्तम को लग जाय, तो ? उसके हाथ झट उठ गये और दरवाजा खुल गया।

नरोत्तम अन्दर आ गया और किवाड़ों को अन्दर से पुनः बन्द कर लिया। फिर कहा, 'बुआ, अभी तू यहीं है ?'

अमीरन ने नरोत्तम के सामने हाथ फैलाकर कहा, 'बेटा, शकूरा, रफ्फो, गफूरा सभी ने मुझे यह मोहल्ला छोड़ भाग चलने के लिये कहा था, पर मैंने यही कहा, कि 'मैं इसी दहलीज पर मरना चाहती हूँ। इसी दहलीज से मेरे शौहर का जनाजा गया था, और इसी जगह मैं भी मरूंगी।' बेटा, माफ करना आज, मुझे तुझ पर शुबहा हो रहा है। कहीं तू मुझे मारने तो नहीं आया है?' कहते कहते अमीरन का गला भर आया।

'कैसी बात करती हो, बुआ! तुम्हें बचाने आया हूँ, कत्ल करने नहीं! मैं तुम्हें अपने घर ले चलूंगा। आज यहां अगर रहोगी, तो जरूर घिर जाओगी! इस मुहल्ले की हालत अच्छी नहीं है। लोग और मुहल्लों में हुई वारदातों को सुनकर भड़क रहे हैं। इसलिये तुम फौरन मेरे साथ चली चलो!'

'खुदा मुझे मेरे नापाक ख्यालों के लिये माफ करे! मगर, बेटा, मुझे यहीं रहने दे! जब अब तक ही कहीं नहीं गई, तो आज कहां जाऊँ? मुझे डर नहीं है। जैसा भी होगा, यहीं पर भुगत लूंगी।'

'लेकिन मैं तुम्हें यहां किसी तरह नहीं रहने दूंगा! अगर ऐसे नहीं चलोगी, तो जबरदस्ती उठाकर ले जाऊँगा। मैं इस घर में अब तुम्हें नहीं रहने दूंगा!'

'बेकार की जिद नहीं करते, बेटा। मैं यहां से कहीं भी नहीं जाऊँगी!'

'तो इसका मतलब मैं यह समझूं कि तू मुझ पर विश्वास नहीं करती। शायद सोचती है कि मैं तुझे ले जाकर कहीं भेड़ियों को न सौंप दूं। मगर बुआ माता जी ने मुझसे कहा है कि बिना उसे लिये न आना। अगर तू मेरे साथ न चलेगी, तो मैं भी यहीं रहूँगा और मौका पड़ने पर तेरी खातिर मैं भी जान दे दूंगा! पर मैं तुझे यहाँ अकेली कत्ल होने के लिये नहीं छोड़ सकता!'

बुढ़िया कुछ उत्तर न दे सकी। चुपचाप कुछ सोचने लगी।

नरोत्तम भी कुछ देर चुपचाप खड़ा रहा। फिर बुढिया को कुछ भी न बोलते देख बोला,—'बुआ, जल्दी उठ, कहीं देर न हो जाय ! वक्त नाजुक है !'

पता नहीं कि बुढ़िया के मस्तिष्क में क्या बातें आईं कि वह एक आज्ञाकारी बालक की भांति तुरन्त उठ खड़ी हुई। कोने में रखे हुये मटके में से उसने एक छोटी-सी पोटली निकाली, और दोनों व्यक्ति घर के बाहर हो गये।

अँधेरे के कारण नरोत्तम बुढ़िया के मुख के भावों को न देख सका। आगे-आगे नरोत्तम और पीछे-पीछे अमीरन नंगे पैरों बड़े हल्के कदमों से गली में चले जा रहे थे। इनमें एक हिन्दू था और दूसरी मुसलमान थी। लेकिन हिन्दू और मुसलमान के ऊपर भी वे इन्सान थे, इन्सानों की तरह ही उनका भी एक-दूसरे से रिश्ता था। एक भतीजा था और दूसरी बुआ थी।

गली में घोर अन्धकार छाया हुआ था। सारे हिन्दुस्तान पर इस समय ऐसा ही अन्धकार छाया हुआ था। लेकिन इस अन्धेरी गली में एक हिन्दू और एक मुसलमान, नहीं, नहीं दो इन्सान एक टिमटिमाती हुई ज्योति-शिखा हाथ में लिये अन्धकार में आगे बढ़ रहे थे। कौन जाने कि उनकी कम्पित ज्योति-शिखा उस अन्धकार में विलीन हो जायगी या अन्त में वह अन्धकार को ही निगल जायेगी ! (1957)

रम्पो

'धम्म धम्म धम्म !'

'हाय अम्मा री, मार डाला, मार डाला पापी ने !'

'चुपकी हैजा री !'

मेरी नींद टूट गई। बात समझते देर न लगी। 'यह तो रोज का किस्सा है !' कहकर मैंने करवट बदली और फिर सोने की कोशिश करने लगा, पर आप यह जानने को उत्सुक होंगे कि यह प्रकरण आखिर क्या है। सो बात कुछ ज्यादा नहीं।

बात सिर्फ यह है कि हमारे पीछे रहने वाले हजरत शराबी, लफंगे सब कुछ हैं, जाति के काछी हैं। रात को बारह एक बजे जब वह अपनी इन्द्रपुरी से उतर कर इस लोक में आते हैं और रम्पो को आवाज देते हैं, उस वक्त रम्पो को बिजली बनना ही होगा, नहीं तो ...

मुझे तसकीन होते तो देर न लगी, लेकिन नींद जो एक बार उचटी, तो फिर पास न फटकी और मैं यों आँखें फाड़े कड़ियां गिनता पड़ा रहा, जैसे किसी ने दोनों पलकों के बीच बांस की खपच्ची बिठाल दी हो। आखिरकार जब नींद बुलाने में एकदम नाकाम रहा तो रोज से कुछ पहले उठकर घूमने चल दिया। लौटते हुये रास्ते में कुयें से पानी भरकर ले जाती हुई रम्पो और बतसिया मिलीं। दोनों के सिरों पर पानी का भरा हुआ एक-एक मटका रखा हुआ था, जिसके ऊपर लच्छा की हुई रस्सियाँ रखी हुई थीं। बायें हाथ में भरा हुआ डोल लटक रहा था और दाहिने हाथ से वे कभी-कभी मटके को

साध लेती थीं। मैंने रम्पो से कह डाला—'आज़ तो तूने रात भर जरा भी नहीं सोने दिया। तुम लोगों के मारे भी बड़ी नाक में दम है।'

'नीच का पड़ोस जो ठहरा, बाबू जी! कहां तक मिटे को रोऊँ? अब सकारे ही सकारे अमीरजादे का हुक्म हुआ है कि नहावे के ताईं पानी भरके लाऊँ। अबहूँ पीठ सीधी नाय होत।'—रम्पो ने बायें हाथ का डोल दाहिने में लेते हुये कहा। लेकिन फिर बतसिया से कह उठी—'जीजी, जा हाथ में तो बड़ी पीर है। जाऊ डोल को नेक तुम्हीं ले चलो। अब तो थोड़ी दूर ही रह गयो है।' बतसिया ने डोल अपने दूसरे हाथ में ले लिया और मटके को निराधार रखे ही चलने लगी। रम्पो फिर कहने लगी—'वह तो भली भई कि कुंइयां पै जीजी मिल गई, नहीं तो हौं तो जा ही मैं सोच में हती कि पानी कैसे भरूंगी।' फिर सांस लेकर बोली—'सच्ची बाबूजी, ऐसी ब्याही से तो रांड भली। न काऊ की रैं-रैं, न काऊ की खट-खट। अपनो कमाइबो और अपनो खाइबो।'

'चल हट दारी, सकारे ही सकारे कैसी भाखा भाखत है? घर घर जाई तरियां (इसी तरह) के हाल हैं। कहूँ कछू जादा, कहूँ कछू कमती।'—बतसिया ने झिड़की दी।

रम्पो को अपने कठोर वाक्य शायद स्वयं ही बुरे लगे, क्योंकि उसने रुआंसे स्वर में कहा—'जीजी, जी दुखत है तो बुरी बात निकस जाये है। बताओ तो आज तक मोय काहू ने दो पोरा तलक से नाय छीओ और अब रुई-सी धुनी जाऊँ हूँ। जब ब्याह भयो हो तब कौन है पतो हो कि कुमर के ऐसे लच्छन बिगरेंगे?'

कुछ ठहर कर, दम लेकर (क्योंकि मटके का बोझ सिर पर था) उसने फिर कहा—'आज हूँ जो मेरे भैया को सोवत

हूं में जे खबर लग जाय तो तुरन्त ही घोड़ी लैके आवै और मोय ठाड़े ठाड़े लिवा ले जाय।'

रम्पो चुप हो गई। बतसिया ने उसके कथन पर कोई टिप्पणी नहीं की। शायद उसे रम्पो के सम्पन्न मायके से हसद हो रही थी, क्योंकि उसका पीहर निहायत ही गरीब था। तीनों चुपचाप चल रहे थे। कुछ सोचने के बाद एकाएक रम्पो बोली—'बाबूजी, मेरे भैया कूँ आज एक कारड लिख दीजो। बड़ो गुन मानूंगी। हमारे गांव ते डौकी को डाकखानो लगत है और गांव तो तुम्हन को पतो ही है, सब लोग मोते कहत ही हैं जाजऊ वारी। चौधरी परसराम की चौपाल में पहुँच कै धनीराम कूँ मिले। बस जाही पते तें सिग चिट्ठी पहुँच जाती हैं।'

मैंने कह दिया—'भला।'

घर आया और अपने कमरे में घुस गया। एक लड़का हँसता हुआ रास्ते से निकल गया है—यह मैंने देख लिया था। मैंने उसी दिन एक कार्ड चौधरी धनीराम को रम्पो की तरफ से लिखकर डाल दिया, जिसमें मैंने सिर्फ यही लिखा था कि 'भैया मुझे बुला लो, यहां मन नहीं लगता है।'

शाम को मुहल्ले का ही एक बालक तीन पैसे लेकर मेरे पास आया और बोला—'बाबूजी, जाजऊ वारी ताई ने जे पइसा भेजे हैं और कह दई है कि चिट्ठी जरूल डार दें।'

मैंने बालक को लौटाते हुये कह दिया कि 'जा अपनी ताई से कह दीजो कि चिट्ठी डार दीनी है।'

आठवें दिन मैंने देखा कि रम्पो के द्वार पर दरअसल एक लाल घोड़ी बँधी हुई थी और रम्पो फुदकती हुई पड़ोसिनों के यहां से कुछ चीजें इकट्ठी करती फिर रही थी। दूसरे दिन दोपहर को चौधरी धनीराम अपनी बहन को घोड़ी पर बिठाकर

और स्वयं एक हाथ में दोनों पनही लेकर दरअसल ही रम्पो को लिवा ले गये। मैंने उस वक्त सोचा कि आज रम्पो जरूर बहुत ही खुश होगी। बच्चे कूदते फिर रहे थे, क्योंकि चलते वक्त रम्पो उन सब को एक एक पैसा दे गई थी।

रम्पो के पीहर जाने के दूसरे दिन सुबह मैं दातून चबाता हुआ छत पर एक तरफ से दूसरी तरफ फिर रहा था। मैंने सुना कि पीछे आंगन में रम्पो के पतिदेव बड़बड़ा रहे थे। कह रहे थे—'आज करी सो करी, अब कबहू जो करें। ससुरी सब तो दीदा फूट गए। मजे तें तैल के पराठे खावेंगे और पट्ठ ठोकेंगे।' न जाने क्यों मुझे उसके इस कष्ट और परेशानी से प्रसन्नता ही हो रही थी, सहानुभूति नहीं। इस तरह बड़-बड़ाकर जब वह चला गया, तो मैंने रम्पो के आंगन में झांक कर देखा। उसके आंगन में बना हुआ चूल्हा जो बस्ती भर में रम्पो की कारीगरी का उदाहरण माना जाता था, फूटा पड़ा था। हजरत तैश में आकर उसे फोड़कर चले गये थे। अब मैं देख रहा था कि घर दिन-ब-दिन भठियारखाना होता जा रहा था। हजरत के मन में कभी आता तो बुहारी लगा लेते, वरना वैसे ही में पड़ रहते। कभी-कभी तो कई-कई रात वह उस घर में सोने भी न आते। आंगन व छप्पर पर जगह जगह बिल्ली का पाखाना और कौओं तथा चीलों की बीट बिखरी विभूति-सी दिखाई पड़ती थी।

इसी तरह दो माह बीत गये। एक दिन मैंने अपनी एक बुढ़िया पड़ोसिन से सुना कि रम्पो का भाई रम्पो को नहीं भेजता। हजरत लेने गये थे, लेकिन दुतकार और फटकार कर भगा दिये और अपना-सा मुंह लेकर लौट आए। दूसरी दफा हजरत बस्ती के चार आदमियों को लेकर, लाठियां बाँधकर, तांगे में बैठकर गये, परन्तु इसका भी कोई फल न निकला। रम्पो के भाई ने उन चारों आदमियों को कायल कर दिया

ग्रौर वे लोग भी लौट ग्राये । इसके बाद हजरत तीन-चार दिन तक रम्पो के भाई के गांव के ग्रासपास चक्कर काटते रहे कि कहीं ग्रँधेरे-उजेले रम्पो टट्टी जाती या खेत बोग्राने ग्राती हुई, या कुएं से पानी भरती हुई मिल जाय तो उसकी चुटिया पकड़कर खींच लायें । लेकिन उन्हें ग्रपने इस प्रयत्न में भी निराशा ही हाथ लगी । ग्रंत में हार कर उन्होंने पंचायत का ग्रासरा देखा । पंचायत बैठी, काफी देर सोच विचार हुग्रा; लेकिन रम्पो के खाते-पीते सम्पन्न भाई के खिलाफ कुछ कहने की हिम्मत पंचों को भी न हुई । उन्होंने भी फैसला हजरत के विरुद्ध ही दिया । पंचायत में रम्पो का भाई कह गया कि ग्रब भी ग्रगर कुछ ग्ररमान रह गये हों तो ग्रदालत लड़कर भी देख ले । वह जानता था कि न हजरत में इतनी दम है कि ग्रदालत का खर्चा बर्दाश्त कर सकें ग्रौर न वह ग्रदालत लड़ सकेगा । इसलिए धमकी देने से भी वह क्यों बाज ग्राये । किस्सा कोताह, रम्पो फिर उस घर में नहीं ग्राई ।

फिर कुछ दिन बाद सुना कि रम्पो के भाई ने रम्पो को दूसरी जगह बैठा दिया है । फिर कोई विशेष बात रम्पो के विषय में सुनाई न पड़ी ।

❀ ❀ ❀

इधर तीन-चार वर्षों में परिस्थितियां कुछ ऐसी तूफान की तेजी से बदली कि उन्होंने मुझे भी कहीं का कहीं ला पटका । इसी साल की बात है, मार्च-ग्रप्रैल के दिन थे । रबी की कुछ फसल कटकर खलिहानों में पहुंच चुकी थी ग्रौर कुछ ग्रब भी खेतों में ही खड़ी थी । जहां-तहां खलिहानों में गेहूं, जौ, चना ग्रादि के ढेर लगे हुए थे, लेकिन मेंह दम न लेता था । नित्य कोई न कोई समय निकालकर पानी बरस ही जाता था । किसान बड़े सोच में थे । करी-कराई मेहनत पर

पानी फिर रहा था। उन्हें उम्मीद थी कि जिस तरह परसाल अच्छी फसल होने से उनके दुख दूर हो गये थे, वैसे ही यह फसल भी उन्हें शुभ होगी। लेकिन आशा अब दुराशा में बदलती जा रही थी। जो खलिहान नीची जगहों में डाले गये थे, उनमें कमर तक पानी भरा हुआ था। सब नाज गल गया था। कुछ-कुछ में तो फिर से कुल्ले फूटने लगे थे। भूसा काला पड़ गया था और ऐसी बदबू आती थी कि जानवर उसे सूंघकर ही छोड़ देते थे। पानी बरसकर जैसे ही आसमान साफ हो जाता किसानों के दिलों में खुशी चमक उठती। 'अब भी खुला रहे; अभी भी कुछ नहीं बिगड़ा है।' आदि वाक्य उनके मुंह से निकल पड़ते। लेकिन प्रकृति भी उनसे एक निर्मम आंखमिचौनी खेल रही थी। बादल घिर आते और ओले पड़ने लगते। खेतों में बिना कटे हुए पौधों की पकी बालें चोट से टूटकर ज़मीन पर गिर पड़तीं और सड़ने लगती। अकाल के-से ढंग दिखने लगे थे। यह हाल युक्तप्रान्त के कितने ही हिस्सों में था। लेकिन पन्द्रह अप्रैल तक बादल सभी जगह अपनी करनी में कोई कसर शेष न रखकर खुल गये थे। जो खलिहान, कुछ ऊंची जगहों पर थे, उनसे तब भी कुछ उम्मीद थी, नहीं तो सब पकापकाया नाज सड़-गलकर मिट्टी में मिल चुका था।

प्रान्तीय किसान-सभा ने मुझे और पंडित रेवती शर्मा को पश्चिमी युक्तप्रान्त के दौरे के लिए नियत किया। बैसाख की तमतमाती धूप में हम लोग सिरों पर अंगोछा डाले और आँखों पर चश्मे चढ़ाये एक गांव से दूसरे गांव में घूमा करते, संक्षिप्त नोट लेते, किसानों को समझाते और शाम को साइकिलें उठाकर फिर किसान-सभा के दफ्तर में पहुंच जाते।

एक दिन हम दोनों सन्ध्या समय अपनी साइकिलों को लेने के लिए उस गांव को लौट रहे थे, जिसमें हमारी

साइकिलें थीं। प्यास अच्छी खासी लग रही थी। पसीने से अन्दर की बनियाइन बिल्कुल तर थी और इसीलिए कुछ-कुछ गर्म हवा भी ठंडी और भली मालूम दे रही थी। दोपहरी से भुने हुए खेतों के बीच कुछ ही दूर पर गांव दीख रहा था। हम लोग कच्ची मेंड़ के एक ढलान से नीचे उतर रहे थे कि दूसरी ओर से एक किसान और उसकी स्त्री आते दीख पड़े। स्त्री की गोद में एक बच्चा भी था और वह सिर पर एक बड़ी सी पोटरी रखे हुए थी। आदमी भी अपने सर पर भूसे का एक बड़ा गट्ठर रखे हुए था। उनके कुछ पास आने पर मैंने पहचान लिया कि वह रम्पो थी और मेरे मुँह से निकल पड़ा—अरे, रम्पो तू कहां ?

'जाही गांव में रहत हूं, बाबूजी।' कहकर वह ठिठककर खड़ी हो गई। उसका आदमी भी रुक गया। उसकी ओर देखकर वह बोली—'जे ही हैं वे बाबूजी।' फिर मुझसे बोली—'यहां चों खड़े हो, घर चलो। देख नाय रहे कि खोपड़ी पै बोझ घरो है।' और हम चारों बातें करते हुए गांव की ओर चल पड़े। उसके घर पहुंचने पर हम दोनों एक खाट पर बैठ गये और रम्पो हम लोगों के लिये दो कटोरों में सत्तू और पीने के लिए पानी ले आई। हाथ-मुँह धोकर हमने इस वर्ष का पहला सतुआ खाया। रम्पो कहने लगी—'आज सकारे ही पीसो है।' शर्माजी का ईमान एक काछी के घर का सतुआ खाकर फ़िर भ्रष्ट हुआ, लेकिन वह भी बड़े घंटाल हैं, कह देते हैं—'शास्त्र में सत्तू के लिये दोष नहीं माना गया है और फिर हमारा ईमान भी तो बड़ी ऊंची चीज़ है।'

फिर बहुत-सी बातें हुईं। रम्पो के आदमी ने अपनी मुश्किलें बताईं और रम्पो ने दुनिया भर की बातें की। बोली—'निपूते ने फांवटे तो बहुत पीटे पर भैया के अगार

एक न चली ।' मैंने देखा अब रम्पो पूर्ण सन्तुष्ट थी । उसके एक बालक भी था । जेब में एक अठन्नी पड़ी हुई थी । चलते वक्त मैंने उसे बालक के हाथ पर रख दिया और कहा—'रम्पो, तुझे सुखी देखकर मुझे बड़ी ही खुशी हुई ।'

'सब भगवान की किरपा है, बाबूजी ।' कहकर वह थोड़ी देर के लिए चुप हुई, फिर बोली—'फिर कबहूं इततें निकलों तो जरूल आइयो ।'

मैं 'भला' कहकर बिदा हुआ ।

आज मुझे दरअसल खुशी हो रही थी । मैंने कुछ पलों के लिए अपने को पूर्ण सुखी अनुभव किया । मैंने कहा—'इन्हें जनम-जनम तक रिघुरना तो नहीं पड़ता ।'

तुल्ली नास्तिक

(१)

रात के कोई आठ बजे होंगे। तुल्ली किसान की झोंपड़ी के आगे बीस-तीस किसानों का समूह है। रेंडी के तेल का दिया धीमा-धीमा प्रकाश फैला रहा है और उस रोशनी में तुल्ली का लड़का हुलासी धीरे धीरे परन्तु ऊँचे स्वर से 'गोदान' पढ़ रहा है। सभी लोग बड़े ध्यान से सुन रहे हैं। कठिन शब्दों का अर्थ वह बतलाता जाता है। बीच बीच में कोई प्रश्न कर बैठता है और हुलासी उसका उत्तर देता जाता है। लोगों में तरुण अधिक और वृद्ध कम हैं।

यह खुली बैठक रोज़ की चीज़ है। हुलासी गांव के मदरसे में केवल चौथे दर्जे तक पढ़ा था। क्योंकि उस समय जब वह पढ़ता था उसके घर में उसके दादा के अलावा दो काका खेतों में खून-पसीना एक करने के लिये और थे। इसीलिये वह इतना पढ़ सका था। इसके बाद वह अपने छोटे काका के साथ शहर चला गया और गाँव वाले कहते हैं कि तभी से उसके पर लग गये। परन्तु असल बात यह है कि वहां उसका सम्पर्क कुछ अधिक पढ़े-लिखे लोगों से हुआ जिससे उसकी ज्ञानार्जन करने की लालसा को बल मिला। वहां उसने बहुत सी किताबें पढ़ डालीं। शहर में उसने लम्बे लम्बे जलूस देखे। उसने देखा कि एक दिन एक मेहतर को जमादार ने हण्टर से मार दिया तो मेहतरों ने शहर में हड़ताल कर दी, मैदान में सभा की और जब तक जमादार ने उस मेहतर से माफी नहीं मांगी तब तक खींचातानी चलती ही रही। तब उसे जीवन में पहली बार एकता की शक्ति का

अन्दाजा लगा था। गांव में लोग आये दिन पिटा करते हैं। मगर वहां यह सब कुछ नहीं होता जैसे पिटना भी सोने-जागने के समान जीवन का एक प्रधान सत्य हो। शहर में ही उसने प्रेमचन्द के उपन्यास पढ़े। रूस के किसान मज़दूर राज की भी झूठी सच्ची बातें उसने सुनी। परन्तु वह बड़े धीरे पढ़ पाता था क्योंकि नौ-दस घन्टे की शारीरिक मेहनत करने के बाद जैसे ही वह अपनी जमीन से छूती, खटमलों से भरी, ढीलीढाली खाट पर कमर सीधी करने के बजाय टेढ़ी करके कुछ पढ़ता वैसे ही उसे नींद आ दबाती। फिर भी दो बरस में उसने बहुत कुछ पढ़ लिया।

उधर तुल्ली चाहता था कि उसके लड़के का कुवांरा पाप जल्दी ही उतर जाय क्योंकि अब वह अठारह बरस का हो चुका था। घर भर में आज तक कोई भी इतनी उमर तक कुवांरा नहीं रहा था। जब हुलासी कहता कि थोड़ा और कमा लेने दो जिससे कर्ज़ चुक जाय तो उसे उत्तर मिलता—'कर्ज़ तो चलता ही रहता है। न वह चुका और न चुकेगा। उसके नाम को कहां तक रोया जाय। सकल जात में बदनामी हो रही है कि तुल्ली का मौड़ा अब तक कुवांरा है। एक-दो बरस और ब्याह नहीं हुआ तो फिर आगे हो भी नहीं सकता।'

आखिर विवश हो हुलासी को गांव लौट आना पड़ा और तभी से उसकी यह रात की बैठकें भी शुरू हो गईं। जब वह विभिन्न देशों के किसानों के जीवन के विषय में बताता तो किसानों को यकीन न होता। वे पूछने लगते—'चों (क्यों) भैया, वहां जमींदार नहीं का? फिर काम कैसे चले है?' और हुलासी अपनी विद्या बुद्धि के अनुसार कुछ ठीक कुछ अतिरंजित उत्तरों से उनका शंका समाधान करता रहता।

नित्य ही अनेक प्रकार के सवाल होते। हुलासी प्रेमचन्द के उपन्यास और कहानी सुनाता। बीच में कोई किसान कह

उठता—'भैया, जें 'पटेंसुरी' तो बिल्कुल हमारे गांव के पटवारी की नाईं हैं और 'दातादीन' तो पूरे मूला सेठ हैं।'

फिर एक दूसरा जिसने बाबा तुलसीदास की रामायण के सिवा कुछ और न सुना था बोल उठता—'चों लल्लू जे पोथी कौन से बाबा ने लिखी है? बात तो बड़े पते की कही है।'

इन बैठकों का यह प्रभाव हुआ कि गांव के किसान विशेष कर तरुण छाती तान कर यह कहते फिरने लगे कि किसान भी भगवान के बनाये मानस हैं। जमींदार को जमींदार भगवान ने नहीं बनाया। यह तो बीच में बन बैठे हैं। उधर मन्दिर का पुजारी गांव के बड़े बूढ़ों से कहता फिरता कि हुलासी नास्तिक है, भगवान को नहीं मानता, मैंने उसे कभी मन्दिर जाते नहीं देखा। यह हवा और भी गांवों में फैलने लगी। परंतु शाम को हुलासी के अखाड़े में कसरत करने के लिए आने वाले तरुणों की संख्या बढ़ती ही जाती थी।

(२)

गांव के ज़मींदार लाला शिवनन्दन प्रसाद दोपहर का भोजन कर बाहर कचहरी में मसनद के सहारे लेटे हुए लम्बी निगाली की फर्शी को बड़े आराम से गुड़गुड़ा रहे थे। कचहरी में बिछे हुए फर्श पर एक ओर मक्खन जैसी सफ़ेद चादर बिछी हुई थी जिस पर लाला शिवनन्दन प्रसाद घास को दबाने के लिए फेरे जाने वाले रोलर की तरह लुढ़क रहे थे। नीले थोथे से पुती हुई दीवारों पर कुछ चित्र लटक रहे थे जिनमें कुछ तो राधा कृष्ण की लीलाओं के थे और कुछ पुरानी फिल्म अभिनेत्रियों के। छत के बीच में उनकी पुत्री द्वारा निर्मित कांच के मोतियों का एक झाड़ लटक रहा था। दो टाट के टुकड़े दोनों दरवाजों की दहलीज पर पड़े हुये थे

जिनमें से एक तो बाहर चौक की तरफ खुलता था और दूसरा अन्दर जनानखाने की ओर।

बाबू शिवनन्दन प्रसाद की आदत थी कि दोपहर को खाना खाने के बाद हुक्का गुड़गुड़ाते गुड़गुड़ाते वह सो जाते थे। और आज भी वह सोने ही वाले थे कि द्वार पर पटवारी रामसनेही ने आकर जूते उतारे और कंधे पर पड़ी साफी से पैरों की धूल झाड़कर लाला को 'जै गोपाल की' कहते हुए कचहरी में प्रवेश किया। पटवारी जी इतमीनान से पलथी मारकर फर्श पर बैठ गये।

'कहो इस वक़्त कैसे निकल आए?' लालाजी ने प्रश्न किया।

'आपसे कुछ खास बात कहनी थी, लालाजी। शहर से लौट रहा था। सोचा देखता चलूं कि लाला जागते हैं या नहीं।' उसकी आखें फर्शी पर रखी हुई चिलम पर गड़ी हुई थीं। क्योंकि वह जानता था कि लालाजी लखनऊ के सुगंधित खमीरे से बनी हुई तम्बाकू पीते हैं।

'ऐसी क्या खास बात है आखिर सुनूं तो।' कहते हुए लालाजी सरक कर मसनद के सहारे बैठ गये।

इसी बीच में रामसनेही ने चिलम को फर्शी पर से उठाकर दो फूंक मारे और उसे फिर फर्शी पर रखते हुए कहा 'तुल्ली के लड़के हुलासी को तो आप जानते ही होंगे।'

'हां! हां!! जानता क्यों नहीं। वही तो जो थोड़े दिन हुए शहर से लौटा है और रात को गांववालों को पढ़ाता है।'

'हरे! हरे!! आप उसे रात को पढ़ाना कहते हैं वहां तो वह रूस की बातें बतलाता है। कहता है जमींदार पटवारी पुजारी सब लुटेरे हैं...।'

'हैं ! पागल तो नहीं हो गये हो मुंशी जी ? मेरा तो दिल धड़कने लगा । यह सब बकता है ?' बीच ही में टोककर लालाजी कह गये ।

'वह तो और भी न जाने क्या क्या बकता है लालाजी । मन चाहे आप खुद तहकीकात कर लें ।' बुरा सा मुँह बनाकर रामसनेही ने कहा—'हां, और एक बात तो मैं भूल ही गया। कभी कभी शहर से बाबू लोग भी उसके पास आते हैं और उसे किताब और न जाने क्या-क्या दे जाते हैं जिन्हें वह सब लोगों को पढ़कर सुनाता है अभी कल की ही बात है झुन्नी कुम्हार का बड़ा लड़का पुजारी से कह रहा था कि अब तुम्हारे दिन तो गये पंडितजी । गांव के पट्ठे पट्ठे लौंडे ऐसे फिरते हैं जैसे कहीं के लाट साहब हो गये हों ।'

'अच्छा, यहां तक बात बढ़ चुकी है । तब तो कुछ इलाज करना ही पड़ेगा ।' लालाजी ने क्रुद्ध मुद्रा में कहा । कुछ देर चुप रहकर बोले—'और इन लड़कों का तो दिमाग ही बिगड़ गया है । अपना ही लल्ला इलाहाबाद में पढ़ता है । पिछली दफा आया तो कहता था कि बस अब जमींदारी तो गई । जब मैंने कहा कि फिर खा लेना ढेला तो बोला कि नौकरी करूंगा । सुना मुन्शी जी । मैंने भी कहा कि और तुमसे उम्मीद ही क्या है । ऐसे ही तो कुटुम्ब का नाम उजागर करोगे बेटा । आज तक तो किसी ने नौकरी की नहीं, अब तुम नौकरी नहीं करोगे तो कौन करेगा । जमींदारी बढ़ाना तो दरकिनार उसे लीप और देना ।'

'राम राम कहिये लालाजी !! न जाने कैसा वक्त आने वाला है ? भगवान जो न दिखाए सो थोड़ा है ।'

'मुन्शी जी, ऐसे हिम्मत हारोगे तो कैसे काम चलेगा ? भला इन छोकरों से डर जावोगे । अब आज तुमने कहा है । देखना कैसा सीधा करता हूं सबको । एक ही झड़प में सब

बहकी बातें न भुला दूं तो कहना—'कहते कहते उनकी भंवें तन गईं।

'मेरा काम तो आपसे कहना था सो कह दिया, अब आप जानें।' कहकर रामसनेही उठ खड़े हुए। जूते पहन ही रहे थे कि लाला शिवनन्दन प्रसाद ने कहा—'अरे, एक काम और करना मुन्शी जी। घर जाओ तो जरा तुल्ली को मेरे पास भेजते जाना।'

'बहुत अच्छा। राम राम लालाजी।' कहकर रामसनेही खिसक गये।

(३)

आजकल खेतों में काम अधिक है और इसलिये तुल्ली और हुलासी की दोपहर की रोटियां खेत पर ही पहुँच जाती हैं। बाप बेटे दोनों नीम के नीचे बैठे हुये अपनी अपनी रोटियां खा रहे हैं। प्रत्येक के बायें हाथ पर उपलों सी चार चार बाजरे की रोटियां और उनके ऊपर कुछ चने का साग और एक एक अचार मिर्च रखी हुई है।

'लल्लू कल सांझ को मुझे लालाजी ने बुलाया था। कह रहे थे कि हुलासी को समझा देना कि नदी में रहकर मगर से वैर न करे, नहीं नतीजा अच्छा न होगा। मैंने कहा कछू समझाओ तो? तिस पर बोले कि अक्लमन्द को इशारा काफ़ी होता है।'

'अच्छा।' लोटे से एक घूंट पानी पीते हुये हुलासी ने कहा।

'वैसे बातें तो तेरी बहुत करके सच होती हैं।'

'तो फिर सांच को आंच क्या दादा?'

तुल्ली चुप हो गया। अधिक बात करने का उसका स्वभाव नहीं था। इस चेतावनी की गम्भीरता को उसने सोचा

ही न था। हृदय में बहुत दूर तक पैठे हुए बद्धमूल संस्कारों ने उन्हें यह न समझने दिया कि आंच तो वास्तव में सांच को ही है।

किस्सा यहीं खत्म हो गया। और कोई विशेष बात न हुई। हुलासी की रात की बैठकों का क्रम वैसा ही चलता रहा। तीसरे दिन सुबह ही सुबह थानेदार साहब की घोड़ी को देखकर लोगों के कान कुछ जरूर खड़े हुए कि आज किसी न किसी की शामत ज़रूर आई है। मगर दोपहर को जब थानेदार साहब ज़मीदार की हवेली से चले गये तब लोगों की काना फूसियां बन्द हुई।

एक दिन हुलासी को शहर में कुछ काम था। रात की बैठक भी उसने यह कहकर कि कल उसे शहर जाना है और दिन से पहले ही खत्म कर दी। जल्दी लौट आने के विचार से वह अँधेरे में ही शहर की ओर चल पड़ा। सोचा था कि दिन निकलते निकलते शहर पहुंच लेगा। रास्ते में पुलिया के निकट उसे पांच लठैत आदमियों ने घेर लिया और लाठियां बरसानी शुरू कर दीं। हुलासी भूमि पर गिर पड़ा। एक तेज़ चीख उसके मुँह से अवश्य निकली। पांचों आदमी हुलासी को मरा समझ कर और इस डर से कि कहीं कोई देख न ले भाग गये। भोर होते ही गांव भर में हल्ला हो गया कि हुलासी को किसी ने मार डाला है। थानेदार साहब भी घटनास्थल पर पहुंचे। जांच करने पर मालूम हुआ कि हुलासी मरा तो नहीं है लेकिन चोटें ज़रूर बुरी लगी हैं। उसे नगर अस्पताल पहुंचाया गया। तुल्ली और उसकी घरवाली का बुरा हाल था। तुल्ली रोज़ अपने इकलौते को देखने अस्पताल जाता। उसकी पत्नी वहीं अस्पताल में ही रहती। दसवें दिन वह भी गांव लौट आई। हुलासी की हालत अच्छी थी। सिर का घाव भरने लगा था मुँह और पैरों की सूजन कम हो गई

थी। हां बायां हाथ जरूर बेकार हो गया था। डाक्टर ने आश्वासन दिया था कि दस दिन के अन्दर हुलासी अच्छा हो जावेगा।

नगर अस्पताल में डा० त्रिलोक के कमरे में बाबू शिवनन्दन प्रसाद बैठे हुए डाक्टर साहब से बातें कर रहे हैं। डाक्टर के मुख पर रोष और घृणा के भाव हैं और लाला शिवनन्दनप्रसाद गिड़गिड़ाती सी आवाज में डाक्टर साहब से अनुनय विनय कर रहे हैं। २००) के नोटों की दो गड्डियां मेज पर पड़ीं हुई हैं।

'मैं आदमी को अच्छा करता हूं, मारता नहीं, लालाजी।' डाक्टर ने दृढ़ता से कहा।

'पर डाक्टर साहब समझ लीजिये। आपसे क्या कहूं मैं पांच सौ तक दे सकता हूं।' कहकर लालाजी ने तीन गड्डियां और मेज पर रख और उठ खड़े हुए।

दूसरे दिन से हुलासी की हालत बिगड़ने लगी और चौथे दिन वह चल बसा। डाक्टरी रिपोर्ट में लिखा गया कि अंतिम दिनों में हुलासी को निमोनियां का अटैक हो गया था। नींव के पत्थर की भांति वह अज्ञात सो गया। किसी ने शोक सभा करके कोई प्रस्ताव पास नहीं किया। जमींदार साहब ने संतोष की सांस ली और पुजारी सबसे कहता फिरा कि भला भगवान से वैर करके भी कोई फला फूला है। सातवें दिन दरोगाजी पांच सिपाहियों को लेकर आये और हुलासी के छः नवयुवक साथियों को सन्देह में पकड़ कर ले गये हालांकि हुलासी ने अपने बयान में साफ कहा था कि वह आक्रमण-कारियों को नहीं पहचानता। तुल्ली ने गांव छोड़ दिया। गांव में कानाफूसी तो हुई मगर धीरे धीरे वह भी बन्द हो गई।

आज भी कुंए पर पैर चलाते हुए तुल्ली के सामने अगर कोई भगवान का नाम ले देता है तो वह बड़बड़ाने लगता है दुनियां भी बेईमान और मक्कार की है। इनका भगवान भी तो उन्हीं को सताता है जो भले और ईमानदार हैं। हुलासी के रहते मैं भगवान से विमुख नहीं हो सका कभी विमुख नहीं हो सका। लेकिन उसके जाने के बाद मैंने भगवान को भी बिदा कर दिया। कह दिया जा अब तू भी जा। जो मेरे हुलासी जैसे रतन को भी नहीं बचा पाया उसके लिए मेरे मन में जगह नहीं है। और उसकी आंखे गीली हो जाती हैं चेहरे पर पीड़ा की गहरी छाँह छा जाती है जैसे वह अपने शरीर का मांस काटकर फेंक रहा हो। वेदना का वेग बेचारे बैलों की पूंछों को झेलना पड़ता है जिन्हें वह बेदर्दी से मरोड़ देता है।

आस पास के लोग गहरी सांस लेकर कह उठते हैं—'बड़ी गहरी चोट लगी बेचारे को। भगवान से भी मुकर गया।'

धरती की मुक्ति

'पंच के लिए एक पर्चा हमारे नाम का भी दाखिल करा देना मुंशीजी ! कुछ पता है कौन सी आखिरी तारीख है पर्चे दाखिल करने की ?' विश्वम्भरसिंह ने अखबार से बिना दृष्टि उठाये ही कहा। वे दोपहर का खाना खाने के बाद हवेली के बाहर लम्बे-चौड़े चबूतरे पर बिछी चारपाई पर बैठे अखबार पढ़ रहे थे। खरारी खाट पर अखबार सामने बिछा था और जाड़े की धूप उनके घिसे हुए दिमाग को चंचल कर रही थी। थोड़ी दूर पर कचहरी के सामने जमीन पर बिछी दरी पर बैठे मुंशीजी लगान की वसूली और बकाया का गोशबारा बनाने में संलग्न थे मानो कोई ग्वाला यह हिसाब कर रहा हो कि किस गाय ने कितना दूध दिया है और कौन गाय कितना दूध चढ़ा गई है। जमींदार के अप्रत्याशित प्रश्न से चौंककर मुंशीजी ने रसीद-बही से दृष्टि उठाकर जमींदार की ओर देखते हुए केवल 'एं !' भर कहा और कलम दरी पर रखकर अपनी नाक पर नीचे सरकते हुए चश्मे की ढीली रस्सी को कान के चारों ओर कुछ अधिक जोर से लपेटने लगे। जब से पंचायत राज्य की योजना की चर्चा चली थी विश्वम्भरसिंह को उन्होंने उसकी निस्सारता और अव्यवहारिकता का बखान करते सुना था। आज उसी मूर्खतापूर्ण योजना में उनका सहसा उत्साह देखकर मुंशी रामजीलाल का आश्चर्य करना स्वाभाविक था।

अपने प्रश्न का उचित उत्तर न पाकर विश्वम्भरसिंह ने बिना उसकी ओर देखे ही पूछा—'अरे, तुम तो जैसे आसमान से गिर पड़े। इसमें इतने चौंकने की क्या बात है ? मुझे दीख रहा है कि लाख विरोध होने पर भी यह पंचायत का स्वांग

होकर ही रहेगा। उसमें हिस्सा लेने में ही भला है, अलग खड़े रहने में पीछे छूट जाने का ख़तरा है।'

अपने को अपराधी-सा प्रदर्शित करते हुए रामजीलाल ने उत्तर दिया—'मुझे पता नहीं था, नहीं तो तारीख का पता लगा लेता। अब शाम तक लगा लूंगा। लेकिन...' और वह कुछ सोचता हुआ-सा अपने हाथ मलने लगा।

विश्वम्भरसिंह अख़बार पढ़ना छोड़ और खाट से उठने का उपक्रम करते हुए बोले—'लेकिन क्या ?'

रामजीलाल के मस्तिष्क में बेदखली और बेगार, रुक्कों और सूद तथा उनके ऊपर से आजादी के इंजेक्शन से उत्पन्न गाँव वालों के जमींदार के प्रति असंतोष के छाया-चित्र तेजी से घूम रहे थे। उसके मन में संशय था कि ऐसे विद्रोह के वातावरण में जमींदार को गांव वाले पंच क्योंकर चुनेंगे। लेकिन एक अदना नौकर इस विचार को मालिक के सामने व्यक्त भी कैसे करे। अतएव हिचकिचाहट के स्वर में उसने उत्तर दिया—'पंचों के चुनाव में तो सुना है कि गांव के सारे औरत-मरद वोट देंगे।'

अभिव्यक्ति निपट स्पस्ट न होते हुए भी विश्वम्भरसिंह को रामजीलाल का आशय समझने में कठिनाई न हुई। उसकी ओर देखते हुये हँसकर बोले—'अहा ! हा ! हा ! तो क्या तुम समझते हो कि मुझे गांव में वोट नहीं मिलेंगे।

इस प्रश्न का उत्तर भला रामजीलाल दे ही क्या सकता था ! फिर भी उसने कहा ही—'कोशिश काफी करनी पड़ेगी सरकार।'

रामजीलाल की बुद्धि की क्षुद्रता के लिए मुंह पर उपहास का भाव लाते हुए विश्वम्भरसिंह ने कहा—'यह तो दूर की बात है। तुम चिन्ता न करो। अभी तो तुम तारीख का पता

लगाकर नामजदगी का पर्चा किन्हीं दो आदमियों के दस्तख़त कराके दाखिल कर दो ।'

रामजीलाल को लगा जैसे कोई बहुत बड़ी बला उसके सिर से आसानी से टल गई । 'अभी पता लगाता हूँ,' कह कर वह फुर्ती से अपने कागज-पत्तर बटोरने लगा और विश्वम्भर-सिंह अपने बाग की तरफ बढ़ गये ।

हीरांहेडी गांव में विश्वम्भरसिंह की पुश्तैनी जमींदारी की जड़ें गहरी थीं और गांववालों को सदा से यही प्रतीत होता आया था कि उनके जीवित शव के चारों ओर इतनी पास-पास कीलें गाड़ दी गई हैं कि उनका बाल भर भी हिलना असंभव था । आजादी के बाल-रवि की मृदुल रश्मियों में इन जंग खाई हुई कीलों को उखाड़ने की क्षमता नहीं थी । लेकिन बन्धन कुछ ढीले और हवा में कुछ ताजगी सी लगने लगी थी । गांव के चमार और कोरी ही सबसे ज्यादा दलित थे और अब सबसे अधिक चेतना भी उन्हीं में दीखती थी । जैसे बार-बार का कुचला हुआ पौधा अनेक जगहों से शाखें फोड़-कर सन्ना उठता है । अपनी पीठ पर कुछ बाहरी परन्तु सशक्त हाथ देखकर इन नीच लोगों के हौसले बढ़ गये थे । विशम्भरसिंह यद्यपि अब भी सीना तानकर चलते थे परन्तु लोग अब इसे एक निर्जीव हेकड़ी ही समझते थे जिसमें कोई तत्व नहीं होता—फूली हुई रोटी के समान जो चूल्हे से निकालते ही पटक जाती है या अंडी के पोले पेड़ के समान जो एक झकोरे में ही धराशायी हो जाता है । गांव में वैसे तो ब्राह्मण, बनिए, ठाकुर मुसलमान जुलाहे सभी जाति के लोग थे परन्तु संख्या सबसे अधिक चमारों और कोरियों की ही थी और उनको अपने इस महत्व का मान भी था । सर्वाधिक जागृति भी चमारों के युवकों में ही थी जिनमें से अधिकांश ने गांव की मेहनत-मजूरी को गन्दा काम समझकर

शहर के जूतों के कारखानों में अच्छे वेतन पर नौकरियां कर ली थीं। यद्यपि गाँव के सारे चमार लगभग एक ही स्थान पर बसे थे परन्तु उनमें भी छोटा चमरियाना और बड़ा चमरियाना नाम के दो मुहल्ले बन गये थे जिनमें परस्पर अन्तर मुश्किल से एक दो घरों का ही पड़ता था। बड़े चमरियाने के चौधरी बल्लू और छोटे चमरियाने के चौधरी सट्टू में परस्पर इतनी लाग डॉट थी कि होली तक पर कोई एक दूसरे के यहां पानी नहीं पीता था। बात यह थी कि तेरह-चौदह साल पहले बल्लू का लड़का सट्टू की कुंवारी लड़की को भगाकर कानपुर ले गया था और उस विवाद में दोनों मुहल्लों के चमारों ने अपने-अपने चौधरी की हिमायत में फौजदारी तक की थी जिसका मुकद्दमा डेढ़ साल तक चला था। यह पुराना घाव बजाय भरने के नासूर बन चुका था। व्यक्तिगत स्वतन्त्रता की हवा काफी फैल जाने पर भी इन मुहल्लों में अभी तक चौधरियों की बात चलती थी।

विशम्भरसिंह को बुद्ध गया के बोधि वृक्ष के नीचे नहीं अपने ही बाग के इमली के पेड़ के साए में सिद्धि प्राप्त करने का ज्ञान प्राप्त हुआ। अतएव जब एक दिन शाम को चमारों ने उन्हें अपने मुंशी के साथ बड़े चमरियाने की गन्दी गलियों में पैदल घूमते हुए देखा तो बड़ा आश्चर्य किया। पीछे-पीछे अध-नंगे और निपट नंगे बालकों की भीड़ लग गई जैसे किसी मदारी के पीछे लग जाती है या किसी काल में रास्ते से जाते हुए हाथी के पीछे लग जाती थी और आजकल सिनेमा के पर्चे बांटते हुए तांगे के पीछे लग जाती है। बल्लू चौधरी को पता चला तो हाथ जोड़े हुए सामने आकर बोला—'कुछ काम था तो बुलवा लिया होता वहीं हवेली पर।'

सीधा हाथ ऊँचा उठाकर अभय-दान सा देते हुए विशम्भरसिंह ने उत्तर दिया 'अरे, नहीं भाई। जमाने-जमाने का

चलन होता है। आजकल बड़े-बड़े आदमी दिल्ली की भंगी बस्ती में जाते हैं। मैंने कहा इतनी दूर क्यों अपने ही आस-पास क्या नीच बस्तियों की कमी है ?'

'नीच' शब्द बल्लू को कुछ खला यद्यपि इससे भी हजार गुने बुरे शब्द वह किसी काल में अमृत के समान भी पी गया था। कुछ निगलता हुआ सा बोला—'फिर भी सरकार कैसे आना हुआ ?'

प्रश्न का उत्तर न देकर विशम्भरसिंह ने सामने कुंए की ओर इशारा करते हुए कहा—'बल्लू इस कुएं की जगत तो बिलकुल ढह गई है। कहीं किसी का अँधेरे उजेले में पैर रपट जाये तो कुएं ही में दिखाई दे। पानी भी सब तरफ फैलता है और सारी गलियों में कीचड़ और गन्दगी बढ़ती है। ठीक क्यों नहीं करवा लेते !'

'अरे सरकार, किसमें इतना बूता है। दो-ढाई सौ से क्या कम लगेगा। यहां सबको अपने-अपने पेट के ही लाले हैं। भगवान के आसरे जी रहे हैं। कोई गिर पड़ेगा तो आप जान से जावेगा किसी का क्या ले जावेगा।'

'मिले तो तुम कई दफा लेकिन आज तक यह क्यों नहीं बताया ? नहीं तो मैंने कब का ठीक करा दिया होता। गांव में तो एक का दूसरे से काम चलता ही है।' विशम्भरसिंह ने बड़ी कृपा प्रदर्शित करते हुए कहा और फिर मुन्शीजी की ओर घूमकर अधिकार के स्वर में आज्ञा दी—'कल से मुन्शीजी दो राज इधर भेज देना और चार दिन में कुंआ ठीक हो जाना चाहिये।'

मुन्शी जी ने झुककर कहा—'बहुत अच्छा सरकार।' आस पास के घरों के अन्य बहुत से चमार इकट्ठे हो गए थे। कुंए में जमींदार का बेसुरा उत्साह देखकर किसी सयाने लड़के ने आवाज लगा दी—'मतलब गांठने आया है। चौकस रहना।'

बल्लू ने बिना यह लक्ष्य किए कि किसने आवाज कसी थी आवाज कसने वाले को झिड़का—'अरे बड़े कमी न हो। अच्छी बात सुनने के लिये तो भगवान ने कान ही नहीं दिये।' और फिर विशम्भरसिंह की ओर हाथ जोड़कर विनती की—'कोई लड़का है। सरकार मन न बिगाड़ें।'

परन्तु विशम्भरसिंह की नकाब उतर गई थी। तड़क कर बोले-—'आखिर नीच तो फिर नीच ही रहेगा, लाख गंगा-जल में धोओ। कोई इनके भले की भी कहे तब भी इनको चरपरी ही लगेगी। चलो मुंशीजी देर हो रही है। लेकिन कुंए पर कल से मदद लगा देना।' वह मुड़कर चलने लगे। फिर रुक कर बल्लू से बोले—'कल तुम्हें जब फुरसत हो तो हवेली पर आ जाना। कुछ बात करेंगे।'

बल्लू 'भला सरकार' कहकर रह गया और विशम्भरसिंह अपने दल सहित चले गए। बाद में चमरियाने में काफी रात तक दो मतों पर विवाद चलता रहा। एक मत का कहना था कि आखिर विशम्भरसिंह नाती तो चतुरसिंह के ही हैं जो अपने दया धरम के लिए गांव-आनगाँव सभी में प्रसिद्ध थे और उसी दयाभाव से प्रेरित होकर ही वह कुआं सुधरवाने की आज्ञा दे गये हैं। और दूसरे पक्ष, जिसमें अल्हड़ युवक ही अधिक थे, का मत था कि इसमें जमींदार की कुछ न कुछ चाल है।

ज्यों-ज्यों चुनाव का दिन निकट आता गया गांव में अधिक हलचल दीखने लगी। जमींदार पार्टी, ठाकुर पार्टी, हरिजन पार्टी, चमार पार्टी आदि अनेक पार्टियों के नाम सुनाई पड़ने लगे। विशम्भरसिंह ने यद्यपि अपनी चाल से बड़े चमरियाने के एक बड़े दल को अपनी ओर तोड़ लिया था परन्तु उनको विश्वास न था कि अन्तिम समय तक वे लोग उनके

साथ ही रहेंगे। कहीं किसी और ने बहका लिया तब। वह उन लोगों में से थे जो सफलता प्राप्त करने के लिये कोई कोना कमजोर नहीं छोड़ते। अतएव चुनाव की तारीख से पांच दिन पहले वह शहर गए और वहां से पता लगाकर लौटे कि चुनाव कराने कृषि-विभाग के एक इंस्पेक्टर आवेंगे जो गांव वालों को एकत्र करके हाथ उठवाकर चुनाव करावेंगे। विशम्भरसिंह उनको अपने बाग के बंगले में टिकने का न्योता भी दे आये और उनसे कह आए कि गांव में अन्य कोई स्थान उनके ठहरने योग्य नहीं है।

चुनाव निर्विघ्न समाप्त हुए और परिणाम ज्ञात होने पर पता चला कि न केवल विशम्भरसिंह ही अपितु उनके दल के अनेक लोग पंच निर्वाचित हुए थे यद्यपि लोगों का अनुमान था कि चुनाव में उनके लिए बहुत कम लोगों ने हाथ उठाए थे। असंतुष्ट लोगों ने बहुत सी अर्जियां उच्च अधिकारियों को दीं कि चुनाव में बेईमानी हुई है परन्तु समुचित प्रमाण के अभाव में वे सब की सब इस नोट के साथ दफना दी गई कि वे गांव की गहरी पार्टीबन्दी के कारण दी गई थीं। पंचायती अदालत के सरपंच भी विशम्भरसिंह ही चुने गये। उनके सगे-सम्बन्धी तथा अन्य जमींदार मित्रों ने यह समाचार सुनकर मुंह बिचका दिया कि क्या छिछोरापन किया। किस ठाठ की जमींदारी करने के बाद अब सरपंची की है। परन्तु विशम्भरसिंह को अपनी दूरदर्शिता पर अधिक भरोसा था और कुछ लोगों ने उनको कहते भी सुना था। जमींदारी के रौब के लिए तो पुलिस और तहसील के हाकिम अहलकारों के नखरे उठाने पड़ते थे। अब तो हम खुद ही अदालत हैं और ऐसी अदालत जिसके हुक्म की दुनियां में कहीं अपील तक नहीं है। जमींदारी की नाव तो वैसे ही डगमगा रही है। कौन जाने कब बैठ जाये।'

गांव पंचायत का काम चल पड़ने पर पंचायत ने गांव वालों पर टैक्स लगाने आरम्भ किए। हलों पर टैक्स लगा और बैलगाड़ियों पर भी लगा परन्तु रथ पर नहीं लगा जो गांव में अकेले सरपंच के यहां था। इसी प्रकार साइकिलों पर टैक्स लगा परन्तु सरपंच के घोड़े और तांगे पर कोई टैक्स नहीं लगा। मकान पर भी टैक्स लगा परन्तु हवेली से लेकर झोंपड़ी तक सब पर एक ही दर से लगा। विशम्भरसिंह सरपंच ने बड़ी कृपा करके अपनी कचहरी की एक कोठरी गांव पञ्चायत को पञ्चायती अदालत की बैठकों के लिये दान कर दी और उनकी इस दानवीरता का बड़ा डण्का पीटा गया परन्तु गांव वालों ने देखा कि छः साल पहले जिस कचहरी के सामने उनकी मुश्कें बांधकर धूप में पिटाई करके लगान वसूल किया जाता था अब उसी कचहरी के सामने सरपञ्च उनपर फसल का नुकसान करने या चोरी करने के अपराध में जुर्माने की सजा देने लगे थे। पञ्चायती अदालत में होते तो पांच पञ्च थे लेकिन चलती विशम्भरसिंह की ही थी और वही फैसला भी लिखते थे। शेष पञ्च या तो टेढ़े-मेढ़े अक्षरों में गलत दस्तखत कर देते थे या फिर अधिक आसानी से अपने बायें अँगूठे.की निशानी बना देते थे। यदि किसी मुकदमे में अन्य पञ्चों की राय विशम्भरसिंह की राय से न मिलती तो वह तुरन्त उनको यह समझाकर कि उन पञ्चों की राय लिखित कानून के विरुद्ध पड़ती है उनको अपनी राय से सहमत करा लेते थे। इस प्रकार अन्तिम फैसला वही होता था जो विशम्भरसिंह चाहते थे।

इसी बीच दो साल बाद जमींदारी समाप्त होने की घोषणा हुई और उस दिन विशम्भरसिंह ने खद्दर की स्वच्छ पोशाक पहनकर जमींदारी के फूस के पुतले को बीच गांव में जय-जयकार के तुमुल घोष में आग लगा दी परन्तु गांव

वालों को उससे अपने जीवन में किसी परिवर्तन का अनुभव नहीं हुआ। अगर कोई चमारिन सरपंच के घर काम करने न जाती तो उस पर रोज मुकद्दमें लगे रहते और जुर्माने होते रहते जब तक कि वह झक मार कर उसी तरह काम पर न जाने लगती। जमींदारी समाप्ति का भी सरपञ्च की लम्बी-चौड़ी खुदकाश्त पर कोई प्रभाव न पड़ा था। उस पर अब भी अनेकों हाली-बालघी लगे रहते थे। उनका आतंक गांव में पहले से भी चौगुना हो गया था। सरपंच और गांव पंचायत के हथकंडों को समझने में गांव वालों को दो-ढाई साल का समय लगा और जैसे-जैसे धीरे-धीरे यह हथकंडे उनकी समझ में आते गये वैसे-वैसे उनको यह प्रतीत होने लगा कि विशम्भरसिंह की मकड़ी का जाला उनके चारों ओर अदृश्य रूप से इस प्रकार लिपटता जा रहा है कि कुछ दिनों में वे बिल्कुल ही निरुपाय हो जावेंगे और पर फड़फड़ाने तक की सामर्थ्य भी न रह जावेगी। अपनी भयावह परिस्थिति के प्रति उनकी चिन्ता दिन-दिन बढ़ने लगी थी। पंचायत के अगले चुनाव में फिर कोई चाल खेलकर विशम्भरसिंह फिर भी तो पंचायत में घुस सकता था।

इधर जैसे जैसे गांव वालों में आलोक भर रहा था उधर विशम्भरसिंह पर निरंकुश सत्ता का मद उत्तरोत्तर चढ़ रहा था। उनके आदमी गांव में चाहे जिसके खिलाफ झूठे सच्चे इस्तगासे पंचायती अदालत में दाखिल करते रहते थे और फिर फरीकों को बुलाया जाता था उनसे शर्तें की जाती थीं और सौदे तय किए जाते थे। आज रात हल्कू चमार को भी इसी कारण से सरपंच ने बुलाया था। उसको पहले भी एक बार मारपीट के अपराध में सजा हो चुकी थी और इस बार उस पर चोरी का अभियोग था। विशम्भरसिंह अपनी बैठक में गद्दे पर बैठे थे और पास ही में उनका विश्वस्त सहायक

गयाप्रसाद बैठा था। दरवाजे के निकट ज़मीन पर हल्कू बैठा था। विशम्भरसिंह गम्भीर स्वर में कह रहे थे—'यह तुम्हारे ऊपर दूसरा मुकद्दमा है। पहली दफा तो कम जुर्माना हुआ था लेकिन इस बार पूरा जुर्माना होगा।'

हाथ जोड़कर हल्कू ने कहा—'सरकार को अख्तियार है। पर भगवान जानता है कि चोरी तो मैंने नहीं की है।'

'भाई, भगवान और राम को तो हम जानते नहीं। सभी फंसने पर ऐसा ही कहते हैं। असल बात तो सबूत गुजरने पर है। लेकिन अगर मुकद्दमा साबित हो गया तो पूरे सौ रुपये जुर्माना होंगे। अच्छी तरह सोच-समझ लो।' विशम्भर-सिंह ने समझाते हुए कहा।

'सौ रुपये तो क्या मेरे पास तो सौ अधेला भी नहीं हैं। खाने तक को पूरा नहीं पड़ता। कहां से लाऊं?' हल्कू ने उत्तर दिया।

इसका उत्तर गयाप्रसाद ने दिया—'यह तो सरपंच ने तुम्हें पहले से जता दिया कि अपना सोच समझ लो। गांव की बात है। बाद में नामोसी आवे। फिर दुनियां में रुपया पैसा ही तो सब कुछ नहीं और भी हज़ार चीज़ें हैं। शास्त्र में पंच को परमेश्वर का दर्जा दिया है। उससे कोई दोष नहीं होता। तेरी बतसिया बड़ी ठसक से चलती है। कभी-कभी इधर हवेली की तरफ भी भेज दिया कर उसे।'

हल्कू सन्न रह गया। ऐसे कुटिल प्रस्ताव की उसे आशा नहीं थी। वह तो यह सोचकर आया था कि अधिक से अधिक सरपंच उससे पन्द्रह-बीस दिन अपने खेतों की कटाई करा लेंगे। उसकी स्त्री साधारण चमारिनों को देखते हुए कुछ रूपवती थी, यह वह जानता था और उस पर गर्व भी करता था। उसके मन में आ रहा था कि इस कमीने गयाप्रसाद की जीभ

खींच ले या उसकी छाती पर चढ़कर उसका खून पी ले परंतु कुछ सोचता हुआ वह इन भावनाओं को मन में दबाकर रह गया और कोई उत्तर न दिया। उसे चुप देखकर गयाप्रसाद ने फिर कहा—'अच्छा, जाओ कोई जल्दी नहीं है। सोच समझ लो।'

'राम! राम!' कहकर हल्कू उठ खड़ा हुआ। घर आकर उसने बतसिया को सारा किस्सा बताया तो उसे आग-सी लग गई। आंगन से झाड़ू उठाकर दिखाती हुई बोली—'इसी से उस मरे के लच्छन झड़ावूंगी। हम गरीब हैं तो क्या हमारी कोई इज्ज़त नहीं है। अपनी ठकुराइन को न कुत्तों से चटवाये।' यही कहते-कहते वह घर के बाहर निकल गई।

हल्कू तो शायद सवेरा होने पर ही मुहल्ले में कुछ लोगों से इसकी चर्चा करता परन्तु बतसिया ने तो हाथ फटकार-फटकार कर और चिल्ला-चिल्लाकर सारे मुहल्ले को सिर पर उठाकर आग लगा दी। जिस किसी ने इस घृणित प्रस्ताव को सुना आग-बबूला हो गया। बात-की-बात में हल्कू और बतसिया का सवाल पहले सारे चमारों का सवाल बना, फिर सारी नीच जातियों का सवाल बना और अन्त में तो सारे गांव का ही सवाल बन गया क्योंकि ऊंची जातियों में भी विशम्भरसिंह की एकाधिकार सत्ता के प्रति असंतोष घनीभूत हो चुका था। गांव में लगभग हर किसी आदमी के दिल में कोई न कोई खरोंच थी। किसी पर बेहद टैक्स लगा था तो किसी पर अंधाधुंध जुर्माने हुए थे, किसी को अब भी बेगार में पिसना पड़ता था तो किसी के घर की नाली बन्द करा दी गई थी। लेकिन अलग-अलग इनमें से कोई इतनी महत्त्वपूर्ण नहीं थी जिस पर सारे गांव को एकमत किया जा सकता। परन्तु स्त्री की इज्ज़त पर हमला, बहू-बेटी की आबरू का

प्रश्न तो इतना भावनात्मक है कि उसको लेकर सैकड़ों लड़ाइयां लड़ी जा चुकी हैं, लाखों जानें दी जा चुकी हैं और आगे भी दी जाती रहेंगी। फोड़ा तो अच्छी तरह पक ही चुका था केवल एक हल्की-सी ठेस लगनी शेष थी, वह आज लग गई। लोगों की राय हुई जो कुछ भी करना है तुरन्त करना चाहिए जिससे विशम्भरसिंह को उसकी काट करने का अवसर न मिल सके। रात में ही काफी लोग इकट्ठे हो गये और बिना किसी आयोजन के ही सभा होने लगी। प्रस्ताव तो विशम्भरसिंह को संसार से विदा कर देने तक का हुआ परन्तु अन्तिम निर्णय यही हुआ कि अपने दुख की गाथा शहर चलकर अफसर को सुनाई जावे और उनके कुछ न करने पर आगे कार्यवाही की जाय।

अगले दिन पंचायत-अफसर ने अपने बंगले के अहाते में ढाई-तीन सौ आदमी औरत तथा बच्चों का हजूम देखा तो कुछ सकपका गया। उनकी शिकायतें उसने ध्यान से सुनी। प्रत्येक ने अपना-अपना दुखड़ा रोया और-कुछ-न-कुछ अतिशयोक्ति के साथ सब ने कहा कि वर्तमान सरपञ्च के कार्यकाल में गांव में किसी की इज्जत सुरक्षित नहीं है और अगर यही हाल रहा तो उन्हें अपने पुश्तैनी-आंगन से उजड़ना पड़ेगा। पञ्चायत अफसर ने उनको अगले दिन तहकीकात के लिए आने का आश्वासन देकर विदा किया।

पञ्चायत अफसर जब गांव में जांच के लिए पहुँचे तो जैसे सारा देश उमड़ पड़ा। सरपञ्च के आठ-दस पिट्ठुओं को छोड़कर शेष सबने सरपञ्च के विरुद्ध बयान दिये। पञ्चायत अफसर ने भी देखा कि कुछ लोगों पर पञ्चायत ने लगातार आठ-आठ दस-दस बार जुर्माने किये हैं और इसी प्रकार कुछ लोगों के खिलाफ कम टैक्स बकाया होने पर भी कुर्की वारन्ट जारी किए गये थे जब कि कुछ अन्य लोगों के

विरुद्ध जिन पर टैक्स की लम्बी-लम्बी रकमें बकाया थीं कोई कार्यवाही नहीं की गई थी। जांच करने के बाद पञ्चायत अफसर तो शाम को वापस चले गये। परन्तु विशम्भरसिंह ने भांप लिया कि धरती उनके पैरों तले से खिसक चुकी है। निकाले जाने की अपेक्षा उन्होंने इस्तीफा देना अधिक सम्मान-पूर्ण समझा और अगले ही दिन उन्होंने गांव पञ्चायत के सब पदों से अपना त्यागपत्र गांव पञ्चायत-अफसर को भेज दिया। त्याग पत्र अस्वीकार होने का तो कोई कारण ही नहीं था। और वह स्वीकार कर लिया गया। इतनी हेठी होने के बाद भी गांव में क्या मुंह दिखाते इसलिये विशम्भर-सिंह कुछ दिन को धनबाद अपने लड़के के पास चले गये जो वहाँ रेलवे में नौकर था। अपनी इस विजय पर सारे गांव में हर्ष छा गया था—उस दिन से भी अधिक जिस दिन पंचायत राज की स्थापना हुई थी या फिर जिस दिन प्रांत में जमींदारी का विनाश हुआ था क्योंकि गांव वालों को केवल आज यह प्रतीत हो रहा था कि उन्हें खुलकर सांस लेने की स्वतन्त्रता है। धरती को जो ग्रहण लगा था वह समाप्त हो चुका था। चौपाल, खलिहान, गलियारे, सभी जगह उत्साह दीखता था और लोगों के निचुड़े हुए मुखों पर चमक थी।

पनघट पर सुन्दो पानी का आखिरी डोल खींचते हुए रमिया से जो अभी अपना घड़ा लेकर पानी भरने आई थी कह रही थी—'अरी, जल्दी कर, दिन तो कब का डूब गया।' और रमिया इत्मीनान से अपना घड़ा पनघट की कुंडी पर जमाकर डोल में रस्सी का फांसा लगाते हुए उत्तर दे रही थी—'अब डर काहे का जीजी ? कौन विशम्भरसिंह का राज है!'

(१०५८)

आशा बिन्दु

यह डाक बंगला मुझे विशेष रूप से पसन्द है। देहरादून रोड पर एक ऊँचे टीले पर निर्मित और शिवालिक की पहाड़ियों से कुछ ही दूर पर स्थित यह डाक बङ्गला इन पहाड़ियों के साये में ऐसा लगता है जैसे कोई छोटा बालक अपने पितामह के सामने अपने दोनों हाथों को ऊँचा उठाकर एड़ियां उचकाता हुआ कह रहा हो कि मैं भी तुम्हारे बराबर ही बड़ा हूँ, और अगर अभी नहीं हूँ तो धीरे धीरे हो रहा हूँ।

डाक बङ्गले के ठीक नीचे से काली सड़क जाती है जो धीरे धीरे ऊंची होती जाती हुई मानो कहती जा रही हो कि सच्ची सफलता का सीधा मार्ग भी ऐसा ही है—सीधी सपाट चढ़ान नहीं जिस पर लुढ़क जाने का खतरा है, बल्कि उत्तरोत्तर उठता हुआ जो अधिक स्थायी है। सड़क के दूसरी ओर कुछ निचाई में थाना है और फिर गांव है जहां अनेकों झोंपड़ियां बेहद पास पास बुरी तरह से गुची हुई हैं जैसे कह रही हों कि जहां निचाई है वहीं पर गन्दगी है, वहीं पर गन्दा पानी सिमटता है, जिसमें असंख्य अल्पायु जीवधारी पैदा होते हैं; और जहाँ ऊँचाई है वहाँ स्वास्थ्य है, सुन्दरता है, जीवन है और महत्वाकांक्षा है—शिवालिक की चोटियों से भी ऊपर उठने की, आसमान से भी बात करने की।

डाक बङ्गले के पीछे की ओर शीशम के नये पेड़ों का झुरमुट है, जिसके पेड़ परस्पर इतने निकट हैं कि उनके तने मोटे नहीं हो पाये हैं और ये पतले पतले और लम्बे लम्बे शीशम के पेड़ सदा वायु से लहराते रहते हैं मानो गांव के

बालकों और वधुओं का समूह ससंकोच इस अनुपम डाक बङ्गले को पिछवाड़े से ही देख रहा हो।

इस डाक बङ्गले में मैं कितनी ही बार टिक चुका हूँ और इसके बूढ़े चौकीदार को भली प्रकार जानता हूँ। वह भी मुझे उतनी ही अच्छी तरह से जानता है। उसकी स्त्री बहुत साल हुए मर चुकी है और इस निःसन्तान बूढ़े के संसार में अपना सगा शायद कोई नहीं है। इसलिये उसे आप कभी अनुपस्थित नहीं पा सकते। बहुत से बहुत वह सामने की कलारी पर बैठा हुआ मिलेगा जहां वह इनाम और बख्शीश या झूठी सच्ची गवाही देने से मिले पैसों का सदुपयोग करता रहता है। जेब में पैसे तो उसे खटमल की तरह काटते रहते हैं और ठर्रे का एक पौआ उसके एकान्त और समरस जीवन को सदा हरा बनाता आया है।

डाक बंगले के अन्दर कमरे में लेटा मैं सोने से पहले कुछ पढ़ने की सोच रहा था कि वह कमरे में यह देखने कि दरवाजों की सारी सिटकनियां ठीक से बन्द हैं या नहीं आया और सब सिटकनियों को जांच कर मेरे पलंग के पास नीचे फरश पर ही बैठ गया। मैं समझ गया कि वह कुछ बात करना चाहता है। अतएव मैंने पूछा, 'कहो जी, मुल्लू, क्या हालचाल हैं ?'

हाथ जोड़ कर उसने उत्तर दिया, 'सब कृपा है सरकार की। अब की बहुत दिनों बाद चक्कर लगा !'

'हां, लेकिन छः महीने ही तो हुये। पुताई व रंग तो इस बार बंगले का बड़ा अच्छा हुआ है,' मैंने कहा।

'ठेकेदार लोग सब खा जाये हैं और पानी से पुताई करे हैं। अब की नया ठेकेदार था सो काम कुछ ठीक कर दिया। वह पुराना चण्डूल तो किसी की सुने हो नहीं था। और हां, सरकार, अपने दारोगाजी भी बदल गये।'

'अच्छा ! कब ?' मैंने पूछा ।

'यही दो महीने हुए,' उसने उत्तर दिया । मुझे पता था कि पिछले दारोगाजी से मुल्लू विशेष सन्तुष्ट इसलिये रहता था कि वह पुलिस के मुकदमों में मुल्लू की झूठी सच्ची गवाही रखा कर उसे कुछ रकम दिलवा दिया करते थे ।

'कौन आया उनकी जगह ?' मैंने फिर पूछा ।

आवाज गिराकर उसने कहा, 'एक पहाड़ी आये हैं । नाम तो इस वक्त जीभ से उतर रहा है । लेकिन इनके बूते दारोगाई चलने की नहीं ।'

मैंने मन में सोचा कि अब इसकी दाल गलना बन्द हो गई होगी । लेकिन प्रकट में कहा, 'क्यों, क्या बात है ? क्या बहुत उमर के हैं ?'

'नहीं, सो तो लड़के से ही हैं । मियां बीबी दो ही हैं । पर दुनिया का तजरबा कुछ नहीं है । कहां ठाकुर साहब (पिछले दारोगाजी) के ठाट थे और कहां इनकी टिमटिमाहट । सवेरे उठकर यहीं से देख लीजो, सरकार । न घोड़ी, न कुरसी, न गद्दे, न गलीचे और न किसी का आदर सत्कार और न ही कुछ रोबदाब । सारे इलाके में थू थू हो रही है ।'

प्रवाह में वह कहता ही जाता परन्तु मैंने पूछा, 'तो क्या यह दारोगाजी रिश्वत नहीं लेते ?'

मेरे प्रश्न का सीधा उत्तर न देकर उसने कहना जारी रखा, 'अरे साहब, इस दुनिया में कहीं ऐसे काम चले है ! ऐसे ही महात्मा बनना है तो बद्रीनाथ में जाकर आसन जमायें । फिर पुलिस की तो नौकरी ही रोब की है कि निगाह उठा दें तो पत्ते मुरझा जायें और उँगली उठा दें तो पानी क्या, सांस भी रुक जाये । सरकार का काम तो इकबाल से चलता है । नहीं तो भला इतने बड़े इलाके में जिसमें पचासों गांव हैं, एक

दारोगाजी कर ही क्या सकते हैं ? ठाकुर साहब के नाम से अब भी इलाके में कँपकँपी चढ़ आये है। बड़े बड़े जमींदार और नम्बरदार तक माथा टेकते थे।'

'कहने की क्या जरूरत थी, इशारा ही हो जाये, बस दुनिया भर की सारी नियामतें इसी देहात में आ जुटती थीं। घर में मेवा, फल और मिठाई पटी रहती थी। जो भी आया बिना खाये नहीं गया। यह थोड़े ही कि पिला दिया ठण्डा पानी और जय रामजी की। लकड़ी की तो टाल लगी रहती थी और फिर भी जो जमींदार आता यही पूछता आता था कि और लकड़ी, नाज, दूध, घी भिजवा दूँ ? दो दो नौकर तो सिर्फ घोड़ी पर ही हिलते थे और दारोगानी ने तो कभी पलंग से नीचे पांव भी नहीं रखा। एक गिलास पानी मांगती थीं तो छः गिलास हाजिर होते थे।'

'पर इनके यहां एक भी नौकर नहीं। अपने देश से एक छोकरा पकड़ लाये हैं, सो बह क्या क्या करे। दिन भर सड़क के मेरे पेड़ों की लकड़ियां बीनता है, तब कहीं जाकर शाम को दारोगाजी की रोटी बनती है। मन में आता है कि एक दिन साले की टांग तोड़ दूं। आखिर यह चोरी ही तो है। लेकिन फिर मन में दया आ जाये है कि चलो किसी गरीब का काम चलता है तो चलने दो।'

मैं सोच रहा था कि पी. डब्लू. डी. की सारी जायदाद को बिना अपनी समझे आखिर चौकीदार रखवाली भी कैसे करेगा। परन्तु मुझे उसके वर्णन में रस आ रहा था इसलिये चुप ही रहा और टोका नहीं। वह कहता ही गया :

'घर का सारा कामकाज दारोगानी करे है—गाय का गोबर कूड़ा तक। दारोगाजी तो बस दो वक्त सानी कर देते हैं। मैले-कुचैले कपड़ों में ऐसी लगे है जैसे कोई चमरिया हो। सवारी के नाम बस भगवान के दिये पैर हैं। अभी कोई

बालबच्चा नहीं है तब तो यह हाल है, जो भगवान की दया से कहीं एक दो बच्चे हो गये तब तो शायद इस छोकरे को भी भगा देंगे। अपने घर के ही हो जायेंगे लकड़ी बीनने वाले।'

मुल्लू का कठोर व्यंग्य मुझे बड़ा खल गया और मुझे कहना ही पड़ा, 'यह तो नहीं कि ईमानदार आदमी की बड़ाई करो, तुम उलटे उसकी टांग घसीटते हो। यह तो अच्छी बात नहीं तुम्हारी।'

'सरकार, बुराई की बात नहीं। आदमी तो ईमानदार है। किसी से एक पैसा नहीं लेता। लेकिन गरीब को तो कभी ठाकुर साहब ने भी नहीं सताया। आखिर यह तो सरकार भी जानती है कि एक सौ बीस रुपल्ली में आजकल होता ही क्या है और लोग अपना गुजर कैसे चलाते हैं। बिना डर के तो हुकूमत होती नहीं। पहले सारी आती जाती मोटरें थाने पर रुकती थीं। अब एक नहीं थमती। दरोगा जी को भी बैठना हो तो अड्डे पर जा कर बैठते हैं। यह भी कोई बात हुई! असल में वे जान गये हैं कि चालान तो अब इस थाने से होना नहीं, फिर डर काहे का।

'और इन का तो सारा खानदान ही सनकी दीखे है। एक महीना हुआ दरोगाजी के बाप आये थे। वह तलवार लेकर सारे इलाके में पूछते फिरे थे कि मेरा बेटा किसी से रिश्वत तो नहीं लेता। अगर लेता हो तो इसी तलवार से सिर उतार लूंगा।'

मैं कुछ सोचने सा लगा था और मेरा ध्यान उचटते देख कर मुल्लू भी उठ कर चल दिया। सोलह आने ईमानदार दारोगा सुनने का मेरा यह पहला ही अवसर था। दारोगाजी के प्रति मुल्लू की प्रतिक्रिया मुझे अच्छी नहीं लगी। लेकिन उसके कारण थे। मुल्लू की आमदनी बन्द हो जाने के अतिरिक्त उसने आज तक केवल एक ही प्रकार के दरोगा

देखें थे। दृष्टि जिस चीज को देखने की आदी हो जाती है उससे भिन्न रूप की चीज आँख में जल्दी नहीं भरती। लेकिन समाज में यदि ईमानदारी की प्रतिष्ठा नहीं हुई तो कोई ईमानदार रहेगा कैसे—यह समस्या मेरे दिमाग को खखोल रही थी। यही सब सोचते विचारते मैं सो गया।

अगले दिन सुबह दारोगाजी से भेंट हुई। नाम था द्वारकानाथ जोशी। बातचीत में शिष्टता थी। बी० ए० तक पढ़ा हुआ था और जीवन के प्रति एक आदर्शोन्मुखी दृष्टिकोण था। मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई कि अंधकार के साम्राज्य में कहीं कहीं ज्योतिपुंज भी हैं जिन पर दृष्टि ठहराई जा सके। इलाके के एक और सज्जन मुझ से मिलने आये। उनसे मैंने जोशीजी की बात चलाई तो बोले—'अपनी पचास साल की जिन्दगी में मैंने ऐसा दारोगा एक भी नहीं देखा। एक दिन यह सोच कर कि इनका काम कैसे चलता होगा मैं इनकी गाय के लिए एक गाड़ी भूसा भरवा लाया। अरे साहब, वह लताड़ पड़ी कि क्या बताऊं। बहुत कहा कि आगे के लिए कान पकड़ा। अब तो गाड़ी ले ही आया हूं। वापस तो ले नहीं जा सकता। लेकिन किसी तरह भी राजी नहीं हुए और भरी गाड़ी गांव की हाट में बेचनी पड़ी। उस दिन का दिन है मैंने तो जाना ही बन्द कर दिया।'

जोशीजी के प्रति अपने हृदय में सम्मान का भाव लिए मैं शहर वापस आया। जिले के पुलिस कप्तान से मेरी मित्रता है। एक दिन बातचीत के सिलसिले में मैंने जोशीजी की ईमानदारी की चर्चा की तो बोले,—'आदमी तो ईमानदार है लेकिन कार्यपटु नहीं है। जब से उसने थाने का चार्ज लिया है अपराधों की संख्या बढ़ गई है और घटनास्थलों पर भी देर में पहुंचता है।'

जानते हुए भी जो न जानने का ढोंग करते हैं उनसे मुझे चिढ़ लगती है। अतएव मैंने कहा, 'क्या आप नहीं जानते कि बहुत से थानों पर प्रत्येक रिपोर्ट इसी भय से नहीं लिखी जाती कि अपराध संख्या न बढ़ने पाये। लेकिन यदि बढ़ी हुई अपराध संख्या का संतोषप्रद उत्तर उपस्थित है तब वह किसी के लिए बुराई का कारण क्यों हो? फिर जिसके पास सवारी नहीं वह घटनास्थल पर तुरंत कैसे पहुंचेगा?'

'यह सब तो ठीक है। लेकिन केवल ईमानदारी से ही तो काम नहीं चलता। तम्बू उठाने के लिए सभी कोनों में तो खूंटे गाड़ने पड़ते हैं। फिर भी मैं उसकी ईमानदारी से ही प्रभावित होकर तो उसे निभाये जा रहा हूं।'

मुझे कुछ सन्तोष हुआ। फिर कई महीने जोशीजी का कोई प्रसंग नहीं आया। एक दिन शाम को कप्तान साहब मेरे घर आये। विविध प्रकार की चलती फिरती रस्मी बातें हुईं। कुछ देर बाद वह एकाएक बोले, 'तुम्हारे जोशीजी तो लाइन हाजिर कर दिये गये।'

मुझे धक्का सा लगा मानो सरकारी सड़क समाप्त होकर कच्ची सड़क आरम्भ हो गई हो। लाइन हाजिर होना तो पुलिस विभाग में दण्ड समझा जाता है। मैंने पूछा, 'ऐसा क्यों हुआ?'

हंसते हुए उन्होंने उत्तर दिया, 'मुझ पर न बिगड़ो, भाई। मैंने नहीं किया। डी. आई. जी. का हुक्म आया था। उसके थाने की अपराध संख्या जिले भर के थानों में सब से अधिक थी।'

असहमति सूचक सिर हिलाते हुए मैंने कहा, 'यह तो कोई बात नहीं हुई। आपने संख्या वृद्धि का उचित समाधान नहीं भेजा होगा। यह तो हवन करते हाथ जलने का हिसाब हुआ।'

'यही तो मैं भी कहता हूं। मुख्य बात काम है। आदमी को अपने काम में तो हर घड़ी चौकस रहना चाहिये,' सिगरेट बुझाते हुए उन्होंने कहा।

मुझे बड़ी खीज सी आ रही थी। बोला, 'तो इसमें जोशीजी की बेचौकसी क्या हो गई ? सफाई से काम करना भी निकम्मापन हो गया ?'

'अरे, तुम तो ऊँची बात करते हो। दुनिया में रह कर दुनियादारी से ही काम चलता है,' उन्होंने बड़े गुरु भाव से समझाया लेकिन मुझे सन्तोष नहीं हुआ। डाक बंगले के गंवार चौकीदार और सुशिक्षित अफसर के दृष्टिकोणों में मुझे कोई भेद न दीखा।

थोड़ी देर में कप्तान साहब तो चले गये लेकिन मेरे दिमाग का आन्दोलन शान्त न हुआ। मुझे लग रहा था जैसे अन्धकार बढ़ता ही जा रहा हो, और क्षितिज संकुचित होता जा रहा हो। जैसे कुछ देर बाद आंखों को कुछ भी दिखाई न देगा। मेरा मन बार बार यही प्रश्न पूछता था कि कोई आदमी ईमानदार क्यों रहे। आज के भौतिकवादी युग में स्वर्ग और नरक की कल्पना से तो बुद्धिजीवी व्यक्ति को फुसलाया नहीं जा सकता और यदि ईमानदार आदमी का समाज भी मान न करे तो यह समाज कहां जाकर टिकेगा। क्या यही समाज की उन्नति का मार्ग है ? क्या संसार में बुरे मनुष्यों की संख्या ही अधिक है ? यदि हो भी तो यह कोई भय की बात नहीं क्योंकि ज्योति की एक रश्मि अपार तिमिर राशि को विजित कर लेती है। परन्तु यदि रश्मि को चमकने ही नहीं दिया जायेगा तब क्या होगा ? प्रश्नों का समाधान न मिलने के कारण रात सोया भी देर से और नींद भी ठीक से न आई।

प्रातः उठा तो आंखें कड़वा रही थीं और मस्तिष्क में फिर उन्हीं प्रश्नों का ज्वार था। घर के पीछे के बरामदे में दातुन चबाता और सोचता हुआ टहल रहा था। सामने नौकरों की कोठरियों के सामने मेरे नौकर गनेश का दस मास का बालक खेल रहा था। वह बार बार खड़े होने का प्रयत्न कर रहा था और हर बार धम से गिर पड़ता था। मुझे लगा जैसे मेरे सारे प्रश्नों का उत्तर मिल गया। हजार बार गिरने पर भी कोई इस बालक को खड़े होने और चलने से नहीं रोक सकता। फिर भला अँधेरा प्रकाश को कैसे निगल सकेगा। प्रकाश तो भासित होगा ही। अँधेरा ही तो उसकी महत्ता प्रदर्शित करेगा। और मेरा मन आल्हाद से भर गया।

तभी गनेश ने आकर सूचना दी कि बाहर कोई आदमी मुझ से मिलने को खड़ा है। जल्दी से कुल्ला करके तौलिये से हाथ पोंछता हुआ मैं बाहर आया तो जोशीजी को खड़े पाया। इससे पहले कि मैं कुछ कहूं उन्होंने नमस्कार करके कहा :

'मेरा रिजर्व इन्स्पैक्टरी में चुनाव हो गया है। कल मुरादाबाद चला जाऊंगा। सोचा आज आपको भी नमस्कार करता चलूं।'

मैंने चकित परन्तु प्रसन्न भाव से पूछा, 'यह कैसे हुआ? तुम तो लाइन हाजिर कर दिये गये थे न?'

'जी, हां, वह तो ठीक है। एक महीने से लाइन में हूं। लेकिन पिछली गरमियों में आई. जी. साहब ने मंसूरी जाते समय मेरे थाने का निरीक्षण किया था और वही अब सिलेक्शन कमेटी में थे। उन्हीं की कृपा से मेरा निर्वाचन हो गया।'

'लेकिन उनके निरीक्षण के समय क्या तुम्हारे थाने की अपराध संख्या बहुत नहीं थी?' मैंने पूछा।

उसने मुस्कराते हुए उत्तर दिया, 'थी तो, परन्तु मेरे उत्तरों से वह प्रभावित हुए थे—ऐसा मुझे उस समय भी लगा था।'

मेरी आंखों की कड़वाहट दूर हो गई थी—इस समाचार से अथवा ठंडे पानी से मुंह धोने के कारण—और मैंने उसे हँसते हुए विदा किया। मेरे विश्वास को बल मिला था। घटा छितर गई थी। (१९५३)

धरती की करवट

'थाने में रपट लिखाने से क्या होगा ? क्या पुलिस का घर भरने के लिए बहुत पैसा इकट्ठा कर लिया है ? तुम्हारा बेटा मारा गया है; तुमको दो सौ रुपये दिला दिये जायेंगे। जाओ, घर जा कर बैठो और बेकार की खुराफ़ात में मत पड़ो,' राव इब्राहीमखां ने निर्णयात्मक ढंग से कह कर मानो पूर्ण विराम लगा दिया और बिना किसी उत्तर की प्रतीक्षा किए अन्दर चले गये।

एक चमार के लड़के का मूल्य इससे अधिक और हो भी क्या सकता था ? मोल्हड़ ने रावसाहब का निर्णय इतने पास से सुना लेकिन उसे लगा जैसे आकाशवाणी की तरह उसने बड़ी दूर की अस्पष्ट आवाज़ सुनी हो। उसे अपने कानों पर विश्वास नहीं हुआ। कुछ काल को उसके सोचने की शक्ति बिल्कुल जाती रही जैसे उसके दिमाग़ में ठंडी बरफ भर दी गई हो। उसे यह भी पता नहीं चला कि सामने वह चबूतरे की सीढ़ियों के नीचे ठंडी धरती पर बैठा है।

मोल्हड़ रावसाहब के दरबार में एक फरियाद लेकर आया था। उसका इकलौता बेटा पल्टू परसों शहर से लौटते हुए गांव के बाहर के झाड़ों में मार डाला गया था। मोल्हड़ रावसाहब से थाने में रपट लिखाने के लिए उनकी अनुमति लेने आया था क्योंकि इलाक़े का यह क़ायदा था कि थाने में कोई रपट तब तक नहीं लिखी जा सकती थी जब तक कि रावसाहब अपनी अनुमति न दे दें।

रावसाहब बड़े ज़मींदार थे। बयालीस गांवों में उनकी ज़मींदारी थी; पटवारी के काग़ज़ों में उन्हीं की खुदकाश्त

लिखी जाती थी। इलाक़े के साढ़े बीस हज़ार लोग कैसे जीते थे–भगवान जाने। शायद रावसाहब की खैरात पर।

थाने के दारोगा की क्या मजाल थी कि बिना रावसाहब की अनुमति के हाथ भी हिला पाता जब कि प्रांत के गवर्नर रावसाहब के यहां शिकार खेलने आते थे। रावसाहब वाइसराय के भोज में आमंत्रित होते थे और जिले के सर्वोच्च अफ़सर रावसाहब की कृपाकोर के लिए टकटकी बांधे रहते थे। यहां ब्रिटिश राज नहीं था यद्यपि उसके थाने थे, थानेदार थे, क़ानूनगो और पटवारी थे। वास्तव में यहां रावसाहब की ही हुकूमत चलती थी।

पल्टू मोल्हड़ का युवा पुत्र था। वह इधर शहर अकसर जाने लगा था और रावसाहब को सूचना मिली थी कि चिड़िया के पर आने लगे हैं। रावसाहब का निशाना चूकना नहीं जानता था। फिर भला पल्टू को कौन बचा सकता था? अब यह भी निश्चित हो गया कि मोल्हड़ अपने इकलौते बेटे की रपट भी नहीं लिखा सकता।

मोल्हड़ को धीरे धीरे कुछ उजाला सा मालूम दिया। वह अपनी पतली सी लकड़ी उठा कर बड़ी मुश्किल से खड़ा हो गया। बुढ़ापे की लकड़ी तो भगवान ने दे कर फिर छीन ली थी। बांस की लकड़ी पर अपने शरीर का सारा भार देकर चलने में उसे डर लग रहा था कि कहीं यह जीर्ण लकड़ी भी न टूट जाये। उसे अपने पैर बड़े बोझिल लग रहे जैसे किसी ने उनमें चक्की के पाट बांध दिये हों या इन्जेक्शन लगाकर सुन्न कर दिया हो। उसे लग रहा था जैसे उसके पीछे जेल का लोहे का भीमकाय दरवाज़ा बन्द हो गया हो जिसकी ठंडी सलाखों पर सिर पटकने से कुछ लाभ नहीं होता। बिरादरी के लोगों ने उससे कल ही कहा था कि वहां जाने से कुछ फ़ायदा नहीं होगा। लेकिन उसका आहत हृदय यह

मानने को तैयार ही न होता था कि कोई ऐसा अहेरी भी होगा जो घाव देखकर भी पट्टी नहीं बांधेगा।

वह गांव के बीच से धीरे धीरे चला जा रहा था जैसे वह अपने क़दम गिनगिन कर रख रहा हो या रास्ते के घरों की गिनती करता जा रहा हो। गांव क्या, छोटा सा क़सबा था जिसमें बनिये भी रहते थे और ब्राह्मण भी; गन्ने और गुड़ का छोटा-मोटा व्यापार भी होता था और हफ़्ते की पैंठ भी। लेकिन क़सबे में घर किसी का भी पक्का नहीं था क्योंकि रावसाहब का हुक्म था कि रिआया का कोई आदमी पक्का मकान नहीं बनवा सकता। इसे वह अपनी पक्की गढ़ी को चुनौती समझते थे। सभी के घर कच्चे थे और सभी घरों पर छप्पर थे। इन सैकड़ों झोंपड़ों से घिरा हुआ वह महल ऐसा लगता था जैसे अनेकों फुंसियों के बीच सिर्फ एक फोड़ा हो। जब कभी गर्मियों में इन झोपड़ों में आग लग जाती थी तो लोगों को वे लपटें दैवी प्रकोप से अधिक रावसाहब के महल की पैशाचिक हँसी सी लगती थी।

गांव के गलियारे पार करता हुआ मोल्हड़ अब गांव के बाहर आ गया था क्योंकि चमारों और भंगियों की आबादी और शिवजी का मन्दिर गांव से बाहर थे। पहले मन्दिर पड़ता था और उसके बाद हरिजन बस्ती। आते-जाते उठते बैठते रावसाहब गाँव के अन्दर एक मंदिर को नहीं देख सकते थे। और फिर शिवजी को तो वैसे ही श्मशान प्रिय है। आबादी के अन्दर उनका काम ही क्या था? मोल्हड़ ने देखा कि मंदिर उसके हृदय की तरह ही सुनसान पड़ा था। गायें जंगल से गांव को वापस जाती हुई मिलीं। उनके खुरों से उठी हुई धूल उसे हमेशा ही बड़ी अच्छी लगती थी। वह उसे पवित्र समझता था। लेकिन आज उसे यह धूल मरघट की रेत की तरह निस्सार और भयानक लगी। उसे लग

रहा था कि वह एक अशेष मंज़िल की ओर बढ़ा चला जा रहा है।

लेकिन अंत में वह अपनी झोंपड़ी के दरवाज़े पर रुक गया। पत्नी ने उसमें दीया भी नहीं जलाया था। घर का दीपक बुझने पर दीया जलाने की ज़रूरत ही क्या थी ? और अब तो उन्हें अंधेरे ही में रहना सीखना था जिससे एक दूसरे के चेहरे की विषाद की रेखाओं को न देख सकें। मोल्हड़ अपनी लटकती हुई खाट पर ढह पड़ा जिसने उसकी झुकती हुई कमर के लिए काफी स्थान बना लिया था। न किसी ने उससे रोटी के लिए पूछा और न उसके पेट या दिमाग़ ने इसकी मांग की क्योंकि वहां तो पहले ही सीसा भरा हुआ था।

यह घटना १९४० की है। तब से अब तक बड़े बड़े तूफ़ान और आंधियां आईं। लेकिन लाख चाहने पर भी मोल्हड़ मर न सका और रस्सी बंट कर अब भी पापी पेट भर लेता है। इसके बाद सन ४२ का झंझावात आया लेकिन उसकी हवा तक इस क़सबे के सौ मील ऊपर तक न बह पाई। फिर कई साल बाद आज़ादी आई और मुसलमानों का अलग मुल्क पाकिस्तान बना। लेकिन मोल्हड़ की समझ में न आज़ादी आई और न पाकिस्तान क्योंकि रावसाहब तो अब भी गांव में ही रहते थे। आज़ादी के दिन गांव में बहुत से घरों में दीये जले लेकिन उसकी समझ में न आया कि बरसात में दीवाली जलाने से क्या फायदा था। लेकिन धीरे धीरे आज़ादी का अर्थ उसकी समझ में आने लगा। जिन बाहरी लोगों को रावसाहब के इलाके में चोरी-छिपे घुसने का साहस भी न होता था अब वे बेधड़क मोटर जीपों पर तिरंगे झण्डे फहराते इलाके में घूमने लगे। जहां कभी लड़ाई के जलसे के अतिरिक्त पचीस आदमी भी इकट्ठे नहीं हुये थे वहां अब किसानों की

सभायें होने लगीं और उनमें हक, अधिकार और जमींदारी खतम करने की जोशीली बातें होने लगीं। लोगों ने देखा कि यद्यपि थानेदार अब भी रावसाहब का लिहाज करता है लेकिन अब रपट लिखने के लिये रावसाहब की अनुमति की जरूरत नहीं रही।

मोल्हड़ यह सब देखता और उगती चेतना की सांसें उसके कानों में कुछ फुसफुसातीं। वह सोचता कि पल्टू अगर अब मरा होता तो उसकी रपट थाने में लिख ली गई होती, शायद हत्यारों का पता भी चल गया होता और कौन जाने उनको फांसी भी हो गई होती। लेकिन वह मरता ही क्यों ? आज के दिन यदि वह जिन्दा होता तो ? तो वह गांव गांव सभायें करता और इन शहरी नेता लोगों से अधिक घरेलू और अच्छे ढंग से गांव वालों को सारी बातें समझता। आखिर उसके मुंह की बातें ही तो ये लोग कुछ थोड़े और अजनबी शब्दों में कहते फिरते हैं। मोल्हड़ को कुछ गर्व भी हुआ कि जिन बातों का आज घोर आन्दोलन किया जा रहा है उन्हें इस इलाके में कई साल पहले उसका पल्टू लाया था। पल्टू की बातों पर अब काम हो रहा है, यह जानकर उसे कुछ खुशी होती; कुछ आशा का संचार होता और भला लगता कि वह यह सब देखने के लिये जीवित है।

उधर रावसाहब ने हवा का रुख पलटते हुए देखा तो कई दिन के सोच-विचार के बाद तय किया कि शिकंजा कड़ा करना चाहिये वरना प्रवाह में ऐसे बह जाने का खतरा है कि कहीं किनारा हाथ नहीं आयेगा। उन्होंने निर्णय किया कि जितनी धरती पटवारी के कागजों में उनकी खुदकाश्त में लिखी है उस पर किसी अन्य काश्तकार का हल नहीं चलने दिया जायेगा।

अब्दुल्लापुर इब्राहीमपुरा का ही छोटा सा मजरा है जिसमें बीस-पचीस चमार परिवार रहते हैं, और नदी के किनारे की ऊबड़खाबड़ धरती को कई पीढ़ियों से जोतते चले आ रहे हैं। पटवारी के कागज़ों में अपने नाम होने या न होने की उन्होंने कभी चिन्ता ही नहीं की। हर फसल रावसाहब का करिन्दा फज़लबेग तीन-चौथाई से अधिक अनाज बटाई करके ले जाता है और वे लोग शेष बचे अनाज में अपनी नित्य की मेहनत-मज़दूरी से प्राप्त नाज और धन का योग डालकर साल-दर-साल का लम्बा समय काटते आ रहे हैं।

आये दिन की सभाओं और भाषणों की भनक इस मजरे के झोंपड़ों में भी पहुंची और कुछ किसानों ने एक दो जगह इन भाषणों को सुना भी और आधीपरदी बात कुछ समझ में भी आई। पटवारी के काग़जों की नक़लें उन्होंने कई सौ रुपये खर्च करके प्राप्त कीं और उनमें अपने या अपने पूर्वजों के नामों की अपेक्षा रावसाहब की खुदकाश्त लिखी देखकर जलभुन कर रह गये। उनके परामर्शदाताओं ने सलाह दी कि इस्तक़रार काश्त के दावे कर देने चाहिये और उन्होंने न्यायालय में दावे प्रस्तुत कर दिये।

रावसाहब ने यह सुना तो हँस दिये कि बेवक़ूफ़ मुकद्दमों में ख़र्च करने के लिए धन कहां से लायेंगे। जो कुछ पैसे इकट्ठे हो गये होंगे उनकी गरमी निकल जायेगी। कारिंदों को हुक्म हुआ कि इस फ़सल से किसी और का हल ज़मीन में न चलने पाये।

आषाढ़ के मध्य तक ज़मीन जोतने योग्य वर्षा हो गई और किसानों ने अपने हलों की नोकों को सीधा कर बैलों के जुए पर उलटा लादकर अपने चिरपरिचित खेतों की ओर प्रस्थान किया। ज़मींदार अड़ंगा लगायेगा इसकी उड़ती हुई ख़बर उनको पहले ही मिल चुकी। अतएव एक ही दिन सबने

मुहूर्त्त करना निश्चित किया। बस्ती के निकट के खेत में सब से पहले हल जोड़ दिये गये और नवीन वर्षा से प्रफुल्लित बैल पूंछ उठा उठा कर हल खींचने लगे और धरती की छाती चीरने लगे।

अभी केवल सात लकीरें ही खिच पाई थीं कि किसानों ने फजलबेग को एक लट्ठबन्द समूह के साथ अपनी ओर आते हुए देखा। पलक मारते दल-का-दल खेत पर पहुच गया। फजलबेग अपनी दुनाली बन्दूक़ दल के कमांडर की भांति हाथ में दृढ़ता से थामे हुए था। आते ही उसने कड़क कर कहा।

'अपने हल खेत से निकाल लो। रावसाहब का हुक्म है इस साल उनकी सारी ज़मीन में उनके अपने हल चलेंगे।'

'पर यह धारती तो हम अपने बापदादों के ज़माने से जोतते आ रहे हैं,' रतिया ने बैलों को चुमकार कर रोकते हुए उत्तर दिया।

'वह तो रावसाहब की राजी की बात थी। जब तुम लोग हम पर अदालत में मुकद्दमा चलाओगे तो हम तुम्हारी मुँह-देखी कब तक करेंगे? अपनी कोई और ज़मीन देख लो।'

'और ज़मीन क्या ब्याती है? जब ज़मीन हमारी काश्त-कारी की है तो क्यों छोड़ दें?' रतिया ने उसी प्रवाह में कहा। हल की मूठ छोड़कर उसने भी लाठी उठा ली थी।

'देखो, झगड़ा बढ़ाने से कोई फ़ायदा नहीं होगा। ज़मीन में हल नहीं चलने दूंगा।' फजलबेग की त्योरी अपनी अंतिम सीमा तक चढ़ चुकी थी।

किसानों ने आपस में एक दूसरे की ओर देखा जैसे पूछ रहे हों कि अब क्या करना चाहिए। तमाशा देखने के लिए बच्चे बस्ती के बाहर आ गये थे। चमारिनों का हजूम

भी एकत्र हो गया था और वे एकएक सांस में सैकड़ों गालियों की बौछार कर रही थीं कुछ तो काफ़ी आगे तक बढ़ आई थीं ।

अन्त में कन्टू बोल ही पड़ा, 'बिना धरती के भूख से तड़प-तड़प कर मरने से तो अपने पुरखों की धरती के लिए उसी पर सो जाना अच्छा है ।'

उठते हुए उफ़ान में सिर्फ एक ताव की हो तो कसर थी । वह भी पूरा हो गया । मरदों ने देखा कि औरतें काफी आगे बढ़ आई हैं । यह उनको अपनी मर्दानगी को चुनौती लगी । सबने एक स्वर से कहा, 'चाहे खून बह जाये लेकिन धरती में हल हमारे ही चलेंगे ।'

फजलबेग के लिए अब और अधिक देर रुकना असम्भव हो गया । अपनी बाईस साल की नौकरी में उसने ऐसी सीनाज़ोरी आज तक नहीं देखी थी । अपने दल वालों से तड़प कर बोला, 'टेसुओं की तरह खड़े क्या देख रहे हो ? मार भगाओ सालों को ! बड़े हौसले बढ़ गये हैं कमीनों के !'

लाठियां बजने लगीं । चमारों ने भी लाठी का जवाब लाठी से दिया लेकिन पठानों के मुक़ाबले में उनकी लाठी कमज़ोर पड़ी । औरतों ने भी ईंटों और पत्थरों की बौछार की । अपनी ओर कई चमारों को बढ़ते देखकर फजलबेग ने अपनी बन्दूक़ के भी दो फायर दाग दिये । एक गोली कन्टू की जांघ में लगी और वह गिर पड़ा । दो लोग और भी लाठियों की चोटों से बुरी तरह घायल होकर गिर गये । पठानों के दल को भी मामूली चोटें आई और खून तो कोई दसबारह व्यक्तियों के शरीर से बह निकला । तीन चमारों को ज़मीन पर गिरा देखकर आक्रमणकारी दल भाग निकला, और अभी कुछ देर पहले जहां उत्तेजक बातें हो रही थीं वहां अब रोने पीटने और चिल्लाहट का कोहराम मचने लगा ।

कुछ देर बाद दारोग़ा भी गांव में आ गये और दोनों दलों के पन्द्रह पन्द्रह लोगों को गिरफ्तार करके ले गये। कंटू अपने दोनों घायल किसान साथियों के साथ अस्पताल में दाखिल करा दिया गया। दो तीन दिन में दोनों दल ज़मानत पर रिहा होकर लौट आये। पुलिस ने बलवे के अपराध में दोनों दलों का चालान कर दिया। जीवन में पहली बार फजलबेग को भी अभियुक्तों के कटघरे में खड़ा होना पड़ा।

आसपास के इलाके में क्या, सारे ज़िले में इस घटना का शोर मच गया। सभी हैरान थे कि चमारों में पठानों से आंख मिलाने का साहस कहां से आ गया। सारे ज़िले के चमारों ने मुक़द्दमा लड़ने के लिए चन्दा जमा किया, क्योंकि कल यह क़हर कहीं और भी गिर सकता है—इतनी चेतना चमारों में आ गई थी। उनके वकील का भी मत था कि सज़ा ज़मीदार पक्ष को होगी। क्षेत्र के हरिजन एम. एल. ए. भी गांव आये और किसानों को आश्वासन दे गये कि उनकी सरकार में न्याय ही होगा, बड़े छोटे का भेद नहीं किया जायेगा। ज़मीन पर कब्जा बनाये रखने की उन्होंने भी सलाह दी और कहा कि वे शीघ्र ही ज़मींदारी ख़तम करने वाले हैं।

इस घटना से आसपास के किसानों का उत्साह भंग होने की अपेक्षा और भी बढ़ गया। उनमें यह भावना घर कर गई कि जितनी जमीन पर वे कब्जा कर लेंगे जमींदारी समाप्त होने के बाद वह सब उनकी अपनी हो जायेगी। इस भावना के वशीभूत होकर उन्होंने रावसाहब की वास्तविक खुदकाश्त पर भी कब्जा करना शुरू कर दिया।

रावसाहब ने अपनी गढ़ी से बाहर निकलना बहुत कम कर दिया था। उनके मित्र भी बहुत थोड़े रह गये थे। फिर निकलते भी कहां ? सारे इलाके में तो आग लगी हुई थी और अंधेरे-उजेले निकलने में उन्हें अपनी जान का खतरा प्रतीत

होता था। सुबह के साढ़े दस बजे थे। रावसाहब अपने दीवानखाने में तख्त पर मसनद के सहारे आधे लेटे हुए कुछ सोच रहे थे। कभी कभी पास में रखी हुई फर्शी से एक-दो कश खींच लेते थे। इतने में दरवाजे पर बद्रीप्रसाद कारिन्दा दिखाई पड़ा। रावसाहब का वह बड़ा पुराना और वफादार कारिन्दा था। रावसाहब ने उसे अन्दर आने का संकेत किया और वह दबे कदमों अन्दर आकर तख्त के पास रखी कुर्सियों में से एक पर गरदन नीची करके चुपचाप ऐसे बैठ गया जैसे वह किसी की मातमपुर्सी के लिये आया हो। थोड़ी देर तक कोई नहीं बोला। अन्त में रावसाहब ने मौन तोड़ा:

'कहो, क्या हालचाल हैं?'

बद्रीप्रसाद ने थोड़ा गला साफ किया जैसे बड़ी देर की चुप्पी के कारण गला जकड़ गया हो। अत्यन्त दुखी स्वर में बोला, 'क्या बताऊं, सरकार, सभी तरफ से बुरी खबर मिलती है।'

रावसाहब ने कोई कुतूहल व्यक्त नहीं किया जैसे वह ऐसे समाचार सुनने के लिये तैयार हों। कोई उत्तर न मिलने पर बद्रीप्रसाद ने कहना जारी रखा, 'शेरउल्लापुर में भी चमारों ने खुदकाश्त की जमीन पर अपने हल चलते कर दिये हैं और अपने डेरे के नौकरों को भगा दिया है।'

रावसाहब ने माथे को कुछ सिकोड़ कर धीमे स्वर में पूछा, 'फिर तुमने क्या किया?'

'मैं थानेदार के पास गया। उन्होंने कहा कि वह गैर-दस्तन्दाजी की एक रपट लिख सकते हैं और कुछ नहीं कर सकते। बाकी अदालत में अपना दावा कर लो। फिर मैं डिप्टी साहब से भी मिला और उनको भी सारे वाकआत बताये। उन्होंने भी हमदर्दी जाहिर करते हुए कहा कि जमाना

बड़ा खराब है। कोई गैरकानूनी हुक्म पुलिस को नहीं दिया जा सकता। अदालत में इस्तगासा कर लो।'

रावसाहब ने केवल 'हूं!' कहा और बद्रीप्रसाद ने अपनी कार्यपटुता दिखाने को पूछा, 'अब अगर राय आली हो तो इस्तगासा भी कर लिया जाये?'

'नहीं, मुन्शीजी, हर बीघे जमीन पर मुकदमा लड़ने के लिये मेरे पास सरमाया नहीं है। कहां तो मुझे इस बात का गर्व था कि मेरे इलाके का कोई मुकदमा कभी अदालत में नहीं गया कहां आज मैं हजार से भी ज्यादा मुकदमों में मुद्दई या मुद्दाअलेह हूं।'

'तो कैसे काम चलेगा, सरकार?' बद्रीप्रसाद ने पूछा।

'जो होता है होने दो। इन्सान जहां मजबूर होता है वहां खुदा की कुदरत शुरू होती है।'

बद्रीप्रसाद ने कोई उत्तर नहीं दिया और फिर निस्तब्धता छा गई। पास की मस्जिद में मौलवी साहब मकतब के बच्चों को पढ़ा रहे थे: 'ज़ालिम का ज़वाल होता है।'

मोल्हड़ को कुयें पर नहाते हुए लग रहा था जैसे धरती करवट ले रही हो और उसकी सूखी पिंडलियों में नई जान आ रही हो।

कपूत सपूत

'लड़का कपूत निकला। सारे खानदान का नाम डुबो दिया। अपनी जाति में क्या सुन्दर लड़कियों की कमी थी ? बाहर निकलने तक में शर्म लगती है।' बाप ने कहा।

'ऐसे पूत से तो निपूती ही भली थी। कम से कम दुनिया भर के ताने सुनने को तो न मिलते। जो भी आती है यही पूछती है कि जीजी, ललुवा ने यह क्या किया ? अब इसका मेरे पास क्या जवाब है ?' माता ने कहा।

'अजी, उन्होंने तो लाड़ कर-कर लड़के को बचपन से ही बिगाड़ दिया था। नहीं तो ऐसा भी क्या लड़का जो मां-बाप के कहने से बाहर हो। यह सब उसी लाड़ का नतीजा है। उनके साथ हम लोगों को भी उलाहने सहने पड़ेंगे। लेकिन हमारा क्या है ? अगर रामजीलाल ने अपने लड़के से सम्बन्ध रखा तो हमारा रास्ता अलग है। उनके साथ हम सब लोग जाति थोड़े ही खोयेंगे। आखिर हमारे सामने भी तो आस-औलाद हैं...।' रिश्तेदारों ने कहा।

'ज्यादा पढ़ाई का यही फल होता है, लड़के-लड़कियां अपने काबू में नहीं रहते। जहाँ विलायती हवा लगी, फौरन उड़ने लगते हैं। मां-बाप, जाति, धरम सबको उठाकर ताक पर रख देते हैं। बस, हाथ में हाथ डाला और फिरने लगे मेम-साहब बनकर। फिर भला उनके सामने कौन है जिसकी वे चिन्ता करें ?' अर्ध-शिक्षित, अर्ध-विकसित व्यक्तियों ने कहा।

'खबरदार, आज मैं तुमसे अन्तिम बार कहे देता हूं कि अब आगे से मैं तुम्हें प्रसून के साथ न देखूं। मैं तो पहले ही

कहता था कि वह आवारा लड़का है। लो, आज उसका सबूत भी सामने आ गया। और अगर अब भी तुमने उसका साथ नहीं छोड़ा तो तुम्हारे लिये मेरे घर में जगह नहीं।' पड़ोसियों ने अपने-अपने युवा लड़कों से डांटकर कहा।

'राम-राम, आजकल के लड़के-लड़कियां भी कैसे बेशरम हो गये हैं। हमारे जमाने में तो कोई अपने ब्याह की बात तक जबान पर नहीं लाता था और अब लड़के-लड़कियां अपने आप शादी करते फिरते हैं। हे भगवान, अब तो यही बिनती है कि बस तू उठा ले। बहुत दुनिया देख ली।' बुढ़ियों ने अपने ठिठुरे हुए हाथों से अपने अपने कान बन्द करके कहा, जैसे वे इस प्रकार का समाचार सुनने को कतई तैयार न हों, यद्यपि यह निश्चित है कि इस समाचार की विस्तृत जानकारी की सबसे अधिक बेताबी उन्हीं को थी।

इस प्रकार प्रसून को अपने कृत्यपर चारों ओर से लांछन ही मिले: उसके कुछ मित्रों ने भी उससे मुँह मोड़ लिया; केवल एक-दो मित्रों ने उसे इस अवसर पर बधाई के पत्र भेजे थे।

प्रसून इलाहाबाद में पब्लिक सर्विस-कमीशन में एक साधारण क्लर्क था। उसके पिता इटावा में रहते थे और वहीं किसी कचहरी में एक मामूली जगह पर नौकर थे। परन्तु कचहरी की नौकरी की ऊपरी आमदनी के बल पर वे प्रसून को बी० ए० पास करने के लिए इलाहाबाद भेज सके थे। प्रसून ने दो साल में बी० ए० पास कर लेने के बाद इलाहाबाद में ही पब्लिक सर्विस कमीशन में नौकरी कर ली और अगले वर्ष ही मयङ्कमाला से अपना सिविल-मैरेज भी कर लिया। मयङ्क से उसका प्रेम दो साल से था और उसकी

परिणति इस विवाह में हुई। यह सारा बवण्डर इसी विवाह को लेकर उठा था। प्रसून और मयंक दोनों ही जानते थे कि उनके विवाह से बवण्डर उठेगा और दोनों ही उसके परिणामों के लिए तैयार थे।

इसका परिणाम यह हुआ कि प्रसून और मयंक दोनों को ही अपने-अपने घर से नाता तोड़ना पड़ा। न प्रसून ही अपने घर जा सकता था और न मयंक ही। एक कपूत घोषित किया जा चुका था और दूसरी कलमुँही। परन्तु वे दोनों आनन्द से इलाहाबाद में ही रहने लगे। बवण्डर आया, परन्तु उनके पाश को तोड़ने में असमर्थ रहा; क्योंकि इस पाश में प्रेम के क्षणिक आवेश के अतिरिक्त कुछ और स्थायी वस्तु भी थी और वह थी दोनों की परिष्कृत विचारशीलता। धीरे-धीरे काना-फूसी बन्द हो गयी; उठी हुई अँगुलियाँ गिर गईं; लोगों को अपनी बातों के लिए मसाला मिल गया और प्रसून-मयंक काण्ड एक गई गुजरी-सी घटना हो गई। लेकिन प्रसून के लिए घर का द्वार अब भी बन्द था। उसके पिता को अपने पुत्र से अधिक अपनी आन प्यारी थी; अपनी जाति प्यारी थी जिसके वे सम्मान्य सदस्य थे। प्रसून के पिता इन बातों में बड़े कट्टर थे, इसको प्रसून भी जानता था। वे प्रसून का मुँह तक देखने को तैयार नहीं थे, परन्तु प्रसून की माँ दूसरी तरह की थीं। वे अधिक पढ़ी-लिखी नहीं थीं। पुत्र की ममता उन्हें बहुत थी, परन्तु अपनी पति के आगे लाचार थीं। प्रसून को देखने को उनकी इच्छा होती थी, परन्तु मन मसोसकर रह जातीं। फिर भी जब कभी कोई पास-पड़ोसी इलाहाबाद जाता तब वे प्रसून के लिए कुछ न कुछ अवश्य भेजती रहती थीं। उसके कुशल-समाचार इलाहाबाद आने-जाने-वालों से बराबर पूछती रहती थीं। कभी-कभी वे प्रसून से मिलने के लिए इलाहाबाद जाने तक

को तैयार हो जातीं परन्तु जाति से बहिष्कृत होने का भय उनके सारे उत्साह को ठण्डा कर देता। उधर प्रसून और मयंक को अपने-अपने घर की याद न आती हो—ऐसी बात नहीं थी, परन्तु परस्पर की अभिन्नता ही उन दोनों का एक मात्र आधार थी।

इसी प्रकार चार वर्ष बीत गये। संसार इन चार वर्षों में काफी बदल गया, परन्तु प्रसून और उसके घरवालों में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। इधर मयंक का संसार जो पहले प्रसून तक ही सीमित था अब दो शिशुओं के आविर्भाव के कारण अधिक विस्तृत हो गया था। उसका नया संसार बस चुका था, पुराने की उसे अधिक चिन्ता नहीं थी। दो वर्ष पहले प्रसून की माँ कुम्भ के अवसर पर प्रयाग आयी थीं। उस समय वे प्रसून से अच्छी तरह मिल गई थीं और अपनी सुशील बहू को जी भर प्यार कर गयी थीं। प्रसून भी अब एक साधारण क्लर्क नहीं रह गया था, अब वह एक विभाग का डिप्टी सुपरिण्टेण्डेण्ट हो गया था और अपने मिलनसार स्वभाव के कारण उसकी हर जगह अच्छी रसाई हो गई थी। आफिस के सब लोग उसे अच्छी तरह जान गये थे और इसी-लिए उसका कहना नहीं टालते थे।

प्रसून की इस उन्नति का पता उसके माता-पिता तथा नाते-रिश्तेदारों को भी लग गया था। इस समाचार से प्रसन्न होने वाले लोग बहुत थोड़े से थे, अधिकांश तो मन ही मन जल-भुनकर राख हो गये। वे तो प्रसून की बुरी गत देखने के इच्छुक थे—जब प्रसून घर-घर हाथ पसारे घूमता, उसकी सारी अकड़ हवा हो जाती और उसका मस्तक नत हो जाता। परन्तु ऐसा न होकर हुआ बिलकुल उलटा। अब भला प्रसून को किसकी चिन्ता थी ? मुँह फुलाये बैठे हो तो बैठे रहो—प्रसून की बला से।

इधर मन्दी के दिन थे। बेकारी, विशेषकर शिक्षित वर्ग में, बुरी तरह फैली हुई थी। तीस रुपये की साधारण क्लर्की तक मिलना आकाश कुसुम-सा हो रहा था। किसी युवक का परेशान होकर जहर खा लेना, रेल के नीचे कट जाना, घर छोड़कर भाग जाना आदि आये दिन की बातें हो गई थीं। ऐसे समय में प्रसून की उन्नति देख-देखकर उसके रिश्तेदारों को वास्तव में डाह होती थी। उनके जवान-जवान लड़के हाथ पर हाथ धरे घर बैठे हुए थे। बिना किसी तगड़ी सिफारिश के नौकरी मिल जाना असम्भव था, इसीलिए प्रसून के रिश्तेदारों की निगाहें प्रसून की ओर उठने लगीं। शायद उनके लड़कों को नौकरी दिलवाने में प्रसून कुछ मदद कर सके। परन्तु प्रसून के सामने जायें किस मुँह से, यह बहुत बड़ी समस्या थी। इन सभी लोगों ने तो चार बरस पहले प्रसून के खिलाफ़ जबर्दस्त प्रचार किया था; उसके माता-पिता को अपने पुत्र से सम्बन्ध-विच्छेद करने को मजबूर किया था, प्रसून की एक-एक बात को तिलका ताड़ बनाकर दिखाया था। प्रसून से क्या यह सब छिपा था? अब प्रसून से उन्हें क्या उम्मीद हो सकती थी? और अगर मान लो कि बहुत हिम्मत करके गये भी और वहां कोरा जवाब मिला तो फिर क्या मुँह रह जायगा? इसलिए लोगों के दिल में प्रसून के पास जाने के लिए उफान-सा उठता, परन्तु कहीं असम्मान न हो, इस सोच के ठण्डे छींटे पड़ते ही उफान शान्त हो जाता।

लेकिन, संसार से यदि बेशरमों का तख्ता उठ जाय तो फिर संसार चले कैसे? बहुत दिनों तक सोचने-विचारने के बाद आखिर बाबू कृपालसिंह ने प्रसून के पास जाने का निश्चय कर ही लिया। कृपालसिंह प्रसून के कुछ दूर के रिश्ते से चाचा लगते थे। उन्होंने सोचा—ज्यादा से ज्यादा क्या होगा? यही न कि शायद प्रसून ठीक से बात न करे, बहुत

मुमकिन है फटकार भी दे; परन्तु आखिर है तो अपने घर का ही आदमी। जब कचहरी में दिन भर इन ऐरे-गैरों की डाँट सहा करते हैं तब अपने ही आदमी के अपशब्द सुनने में क्या हानि है? और फिर उम्मेद भी ऐसी नहीं है। मैं तो प्रसून को बचपन से जानता हूँ। बहुत ही सुशील लड़का था। मान लिया कि अब बहुत बदल गया होगा; लेकिन गङ्गा चाहे जितनी बार धार बदल ले, रहेगी तो गङ्गा ही, अन्त में गिरेगी तो समुद्र में ही जाकर। यही सब सोच-विचार कर कृपालसिंह प्रसून के पास जाने को उद्यत हो गये। उन्हें अपने चलते-पुर्जे दिमाग पर वास्तव में नाज था। जब कोई पड़ोसी कभी कह देता—'अदालत में काम करते-करते बाबू कृपालसिंह का दिमाग भी अदालती हो गया है।' तो वे प्रसन्नता के मारे बेला-से खिल जाते हैं। चाहे उनका यह खिलना दूसरे लोगों को अँधेरे में भूत की हँसी की तरह ही क्यों न लगे। उन्हें विश्वास था कि वे अपने मिशन में पूर्ण सफल होंगे।

जिस समय बाबू कृपालसिंह ने इलाहाबाद में जाकर प्रसून के घर का द्वार खटखटाया उस समय शाम हो चुकी थी। कुछ अपरिचित-सी आवाज सुन कर जब प्रसून बाहर निकला तो वह कृपाल चाचा को सामने देखकर कुछ क्षण के लिये तो ठक-सा हो गया। बैठक का द्वार खोलकर उसने उन्हें अन्दर बिठाया और नाश्ते-पानी के शिष्टाचार के बाद उनके आने का कारण पूछा।

कृपालसिंह बड़ी लापरवाही के स्वर में बोले—'कुछ नहीं, बनारस तक गया था। चार बजे यहां आ गया था। बजाय दस बजे तक प्लेटफार्म पर पड़े रहने के मैंने सोचा कि चलो तुम से ही मिल लूं। बहुत दिनों से तुम्हें देखा भी नहीं था। अपने बच्चों को ऊँचे चढ़ते देख वाकई बहुत खुशी होती है।'

प्रसून बोला—'चाचाजी, आप भी क्या बात करते हैं ? ऐसा मैं कहां का कलक्टर हो गया हूँ ? और हो भी जाऊँ तो क्या ? आपके लिये तो मैं वही प्रसून हूँ ।'

'बेटा, यह तुम्हारी लायकी है जो ऐसा समझते हो, हम तो यही दुआ मांगते हैं कि भगवान करे तुम्हारी दिन दूनी रात चौगुनी तरक्की हो ।'

इतने में प्रसून के दोनों बच्चे खेलते हुए बैठक में आ गये । कृपालसिंह ने लपक कर उन्हें गोदी में उठा लिया और प्रसून के मना करते रहने पर भी उनके हाथों में दो दो रुपये थमा दिये । बच्चे बैठक में बिछे फर्श पर सफेद सफेद रुपयों से खेलने लगे । इसके उपरान्त प्रसून ने घर का हाल-चाल पूछना शुरू किया और कृपालसिंह सब प्रश्नों का यथोचित उत्तर देने लगे । बात चलते चलते कृपालसिंह के बड़े लड़के पर आ टिकी । प्रसून ने पूछा—'और चाचाजी, मनुआ अब क्या करता है ? क्या कहीं पढ़ रहा है ?'

कृपालसिंह ने भारी स्वर में कहा—'अरे कहां ? उसका पढ़ना तो पार साल ही बन्द हो गया । एन्ट्रेन्स पार साल पास किया था । फिर आगे पढ़ाने के लिये मेरे पास रुपया नहीं था, अब तो घर बैठा है । क्या करें नौकरी कहीं मिलती नहीं । हर जगह तगड़ी सिफारिश चाहिये ।'

प्रसून ने केवल 'हूँ' भर कहा ।

कृपालसिंह ने आगे कहना शुरू किया—'बेटा, तुम्हारे दफ्तर में कहीं कोई जगह हो तो कोशिश करना । अच्छा है कहीं हिल्ले से लग जाय । घर की हालत तो तुम जानते ही हो ।'

प्रसून न जाने क्या सोच रहा था । कुछ देर बाद बोला, 'कोशिश करूंगा, चाचाजी । वैसे उम्मेद तो कम है । यह

वक्त ही बहुत खराब आया है। सच चाचाजी, आप झूठ मानेंगे एक मामूली-सी जगह के लिये हजारों अर्जियां आती हैं और उनसे भी ज्यादा सिफारिशें।'

'हां हां, वह तो मैं भी जानता हूं लेकिन कोशिश करना अपना काम है, आगे भगवान की इच्छा।'

'वह तो करूंगा ही, चाचाजी। मनुआ के लिये नहीं करूंगा तो फिर और किसके लिये करूंगा।'

'बेटा, तुमसे यही उम्मेद है।' कहकर कृपालसिंह चलने की तैयारी करने लगे। प्रसून ने कहा भी 'चाचाजी, अभी तो आठ ही बजा है और गाड़ी तो दस बजे जाती है।' परन्तु कृपालसिंह यह कहकर कि अभी मुझे अपनी ससुराल की ओर के एक अन्य रिश्तेदार से और मिलना है, उठ खड़े हुए।

खाना खिलाते समय मयङ्क ने प्रसून से पूछा—'यह कौन आये थे जो बच्चों को रुपये दे गये हैं?'

प्रसून ने अन्यमनस्क भाव से उत्तर दिया—'कोई नहीं, एक दूर के रिश्ते के चाचा लगते थे।'

प्रसून की मुद्रा ठीक न देखकर और कुछ पूछना मयङ्क ने उचित नहीं समझा।

रात को सोने जाते समय मयंक ने पुनः पूछा—'आज यकायक ये चाचाजी कैसे इधर भूल पड़े?'

'आये क्या थे? अपने मतलब से आये थे। कहने आये थे कि कहीं बेटे की नौकरी लगवा दो।' प्रसून ने उत्तर दिया।

प्रसून की कमीज के बटन बन्द करते हुए मयंक ने फिर पूछा—'तो तुमने क्या कह दिया?'

'कह क्या दिया? यों ही हां-हूं कहकर चला दिया। इन बेशरमों को जरा भी लज्जा नहीं आती कि जिस आदमी को

जलील करने में हमने कोई कसर नहीं रखी उसके पास किस मुंह से सहायता के लिये जायँ ? इन्होंने ऐसे कौन अच्छे सलूक किये हैं जो मैं अब इनकी मदद करूं ? क्यों, है न ?'

प्रसून के दोनों कन्धों पर अपने हाथ रखते हुए मयंक ने उत्तर दिया—'अरे, तुम भी कैसी बातें करते हो ? आखिर हैं तो अपने घर के ही आदमी। अब जो हो गया सो हो गया, पानी डालो उस पर।'

'तो उस अपमान को तुम बिल्कुल भुला देना चाहती हो ?'

'था अपमान तब था। और जब वे स्वयं तुम्हारे सामने मेल का हाथ बढ़ा रहे हैं तो तुम्हें उसे झटकना नहीं चाहिये।'

'तो अभी क्या बिगड़ा है, कोई साफ इन्कार तो किया नहीं है। अभी आफिस में एक जगह भी है। एक बङ्गाली महाशय अपने साले के लिये पीछे पड़े हुए हैं। तुम कहो तो वह जगह मनुआ को दिलवा दूं।'

'अरे, इससे अच्छा और क्या होगा ? उस [illegible] की जगह अपने आदमी की पूछ अधिक होनी चाहिये।'

'सच रानी, तुम कितनी अच्छी हो।' कह कर प्रसून ने मयंक के गाल पर हलकी-सी चपत लगा दी। उसे मयंक से ऐसी समझदारी की आशा न थी।

दूसरे दिन ही प्रसून ने चाचाजी को लिख दिया कि मनुआ को इलाहाबाद भेज दें। उसके बाद धीरे धीरे सारे कुटुम्ब में आना-जाना हो गया। बहुत समय के बाद जब वह एक दिन इटावा पहुंचा तो उसकी खातिर का ठिकाना न था। बहुत दिनों से ललकते हुए हृदय फिर मिल गये थे।

❀ ❀ ❀ ❀

लोगों ने कहना शुरू किया—

'लड़का वाकई सपूत है। जिस बात को उसने ठीक समझा उसे करके ही छोड़ा। फिर अपने विश्वास के आगे किसी की भी चिन्ता न की। घर छूट गया मां-बाप छूट गये लेकिन वह अपनी बात पर कायम रहा। ऐसे ही लोग तो संसार में कुछ कर दिखाते हैं। सच्ची शिक्षा इसी का नाम है। जो आदमी स्वतन्त्र रूप से न सोच सके उसकी शिक्षा का क्या लाभ? प्रसून की उन्नति से खानदान का नाम ऊपर उठा है। देखो तो सही, अब भी उसमें तनिक भी घमण्ड नहीं है। यह लड़का तो बचपन से ही बहुत सुशील था। भाई, पूत के पैर पालने में ही दिखा जाते हैं।'

खैर, अब चार-पांच साल बाद प्रसून सपूत घोषित कर दिया गया। एक दिन यों ही बातचीत के सिलसिले में मयंक ने प्रसून से कहा—'क्लर्क प्रसून कपूत था, डिप्टी प्रसून सपूत है। समझे?' फिर दोनों जोर से हँस पड़े।

ढहती गढ़ी

'आज तो बांहों में बड़ा दर्द हो रहा है,' भुलई ने अपनी बांहों पर हथेलियां फेरते हुए कहा।

'क्यों, कक्कू, ऐसी क्या मशक्क़त कर डाली ?' ढीठ चोखू पूछ ही तो बैठा।

'अरे, कुछ न पूछो, भैया। तीन तीन खेतों में अकेले निराई करते करते सारी जान निकल गई। लड़ाई तो निपूती बन्द हो गई, पर जिस दिन इस मंहगाई में आग लगे, उस दिन चैन आये। कोई आदमी सवाडेढ़ से कम पर राज़ी ही नहीं होता। अब इतना अगर इन्हीं लोगों को दे दें, तो इस खेती में फ़ायदा ही क्या रह जायेगा ?'

भुलई अपने धुन में बरसाती नदी की भांति बहता ही चला जाता यदि हरखू उसकी बात बीच में ही काट कर न बोल पड़ता, 'बात तो सच कहते हो। जब से लड़ाई शुरू हुई है, जान ऐसी मुश्किल में पड़ी है कि कुछ समझ में नहीं आता। पिद्दीपिद्दी से लड़कों तक के मिज़ाज आसमान पर चढ़ गये हैं। सी० ओ० डी०, डिपो—न जाने कैसे कैसे महकमे चला दिये हैं कि आदमी तो सपना हो गये हैं। न जाने कैसा समय आने वाला है !' खांसी आ जाने से हरखू को चुप हो जाना पड़ा।

दो दम मार चिलम भुलई को देते हुए सीसू ने कहा, 'हे राम, तुझे तो बड़ी जल्दी पड़ती है। ज़मीन पर बूंदें पड़ी नहीं कि तुझे खेत बोने की लगी। तभी तो इतनी सारी निराई हो गई है। मैंने तो मावस बीतने पर खेत बोया है।

कहीं पन्द्रह दिन बाद निराई की आवश्यकता पड़ेगी। और सुना है इसी पहली तारीख़ से डिपो बन्द हो रहा है। तब तो बहुतेरे आदमी मिल जायेंगे। सच कहता हूं, भुलई, अगर आदमी भेड़बकरियों की तरह नहीं मारे मारे फिरें, तो मेरा नाम बदल देना।'

दिन भर के परिश्रम के उपरांत हनुमान मन्दिर के बाहर पक्के चबूतरे पर बैठे कुछ ग्रामीणों में बातचीत हो रही थी कि इतने में नरायन ने चबूतरे के पास आ कर अपनी साइकिल रोकी और दो पैसे वाला एक सफ़े का 'शंखनाद' बैठे हुए लोगों के बीच में फेंक दिया। बातचीत के बहते प्रवाह में भवर पड़ गया और उसकी दिशा बदल गई। सीसू ने बड़े सम्भाल के अख़बार उठाया, मानो वह किसी रेशमी साड़ी को तहा रहा हो और उसे चोखू की ओर बढ़ाकर बोला, 'देखियो रे, चोखू, इस में क्या लिखा है ? सोना गिरा या बढ़ा ?'

चोखू ने सीसू से अखबार ले लिया और सोने के भाव देखने के पहले बड़े बड़े अक्षरों में लिखी हुई प्रथम पंक्ति पढ़ी—ज़मींदारी ख़तम होगी। प्रान्तीय सरकार का फ़ैसला।

उपस्थित लोगों ने मुँह फाड़ दिया जैसे कोई बड़ी आश्चर्यजनक घटना घटी हो। सामने के कच्चे दगरे से जाते हुए लोग भी समाचार सुनने के लिए चबूतरे के निकट सिमट आये। चोखू ने पूरा समाचार पढ़ दिया, और इससे पहले कि वह समाचार पत्र का अन्य भाग पढ़ता लोगों ने उपर्युक्त समाचार पर टीका-टिप्पणी करनी आरम्भ कर दी। जिसकी जो समझ में आ रहा था, उसे व्यक्त करने के लिए वह उतावला था।

'मैंने तो सपने में भी यह नहीं सोचा था कि इतनी जल्दी यह हो जायेगा,' हरखू ने अपना सिर खुजाते हुए कहा।

'पाप का घड़ा कब तक नहीं भरेगा, कक्कू ?' चोखू ने टिप्पणी की।

भुलई ने मुँह बनाकर कहा, 'अब फिर कांग्रेस का राज हुआ है। देखते जाओ, लल्लू, क्या क्या होता है ? सारे जुरमाने वापस कर दिए जायेंगे।'

'मुझे तो, भैया, कोरी बातें ही दिखाई देती हैं। भला, सनातन से चली आई ज़मींदारी यों ही ख़तम हो जायेगी ? कोई ग़दर थोड़े ही मच गया है कि जिसको चाहा लूट लिया,' पुजारी मुरली बाबा ने उपस्थित जन समूह के विरुद्ध सम्मति दी।

'बाबा, अपनों का राज है, कोई गवरमिंटी थोड़े ही है !' चोखू ने पुजारी को चिढ़ाने के उद्देश्य से व्यंग्यात्मक स्वर में उत्तर दिया।

'अरे लल्लू, हम तुम क्या कर सकते हैं ? जो हनुमान बाबा की मरज़ी होगी, वही होगा,' पुजारी ने पुरखेपन की बात कही।

'सो तो है ही, बाबा। उसकी मरज़ी के बिना तिल भर भी नहीं सरक सकता,' कहते हुए वृद्ध हरखू ने चोखू और पुजारी के बीच बढ़ते हुए विवाद को ख़तम कर दिया।

'अरे भैया, ऐसे क्यों फूलते हो ? अभी तो डेढ़ दो बरस में क़ानून बन पायेगा, तब तक तो बेगार करनी ही है,' एक अन्य व्यक्ति ने सांस भर कर कहा।

प्रत्येक व्यक्ति इस सुसंवाद को अपने परिचितों को शीघ्र-से-शीघ्र सुनाने के लिए इतना अधिक आतुर था कि चबूतरे पर एकत्र हुई भीड़ धीरे धीरे छटने लगी, और अन्त में हनुमान जी का चबूतरा उठी हुई हाट के मैदान के समान सुनसान हो गया। थोड़ी ही देर में यह सम्वाद गांव के प्रत्येक

व्यक्ति की जिह्वा पर था। सबों के मन में एक विचित्र आनन्द था। भारत से अंग्रेज़ों के जाने पर भी ये लोग शायद इतना प्रसन्न न होते जितना कि आज थे। जिस ज़मीन को वे मुद्दत से जोतते आ रहे हैं वह उनकी अपनी होगी—एक किसान के लिए इससे अधिक आनन्द की बात और क्या हो सकती थी ?

किसी वन में शेर के आ जाने पर जैसे गीदड़ों के समूह में खलबली पड़ जाती है कि अब उनकी जान की खैर नहीं है—कुछ कुछ ऐसा ही वातावरण ज़मींदार ठाकुरसिंह की गढ़ी में छाया हुआ था। ठाकुरसिंह की कचहरी में छः सात व्यक्तियों का जमघट था। पटवारी, कारिंदे के अतिरिक्त ज़मींदार का मुँहलगा हफ़ीज़ पहलवान तथा उसके कुछ चेले जमा थे। यहां भी जमींदारी ख़तम होने के समाचार पर बात हो रही थी, परन्तु एक दूसरे दृष्टिकोण से।

ठाकुरसिंह कहे जा रहे थे, 'नई सरकार से उम्मीद तो यही थी, लेकिन ऐसा नहीं सोचा था कि असेम्बली में पहुंचते ही पहले नम्बर हमारी गरदनों पर ही हाथ साफ़ करेंगे। इतना चन्दा देने पर भी शैतानी से बाज़ न आये।'

'आजकल के ज़माने में नेकी का फल बदी ही तो मिलता है,' कारिन्दे ने कहा।

'लेकिन मुआवज़ा देने की बात भी तो कही है। फिर तो एक तरह से सरकार ज़बरन ज़मींदारी खरीदेगी,' पटवारी रामलखन ने भी चुप रहना ठीक न समझा।

'अरे, तुम भी क्या बच्चों की सी बातें करते हो! मुआवजा भला क्या मिलेगा? वैसे ही फुसलाने की बात है,' ठाकुरसिंह ने उत्तर दिया।

'जी, हां, बिलकुल बजा फरमाया। 'दिल बहलाने को ग़ालिब यह ख्याल अच्छा है' ठीक ही कहा है,' हफ़ीज मियां ने ताईद की।

'लेकिन अखबार में यह तो कहीं नहीं लिखा है कि जमींदार की खुदकाश्त भी छीन ली जायेगी,' ठाकुरसिंह ने कुछ सोचने के बाद धीरे से कहा।

'मेरा भी यही ख्याल है कि जमींदार की सीर से हाथ नहीं लगाया जायेगा। और अब यही कोशिश होनी चाहिये कि ज्यादा से ज्यादा परती जमीन को हम अपनी खुदकाश्त में शामिल कर लें,' कारिन्दे ने प्रस्ताव किया।

'खुदकाश्त तो वैसे अपनी कम नहीं है। सन् '४० से '४२ तक के अरसे में काफी बढ़ी थी। लेकिन अब बेदखली में जरा भी रिआयत नहीं करनी चाहिये। इसके अलावा सारी पड़ती जमीन में अपना हल चलवा देना चाहिये जिससे उस वक्त कोई दिक्कत दरपेश न हो।'

'नहर के उस तरफ सारी जमीन पड़ती पड़ी हुई है। उसमें अपने ही गांव के क्या, आसपास के सभी गांवों के जानवर चरा करते हैं। ऐसी सब जमीनों पर अब कब्जा जमा लेना चाहिये,' कारिन्दे ने उत्तर दिया।

'बात तो आपकी ठीक है। लेकिन मुझे डर है कि कहीं गांव वाले इसकी मुखालफत न करें,' जमींदार ने सोच कर कहा।

'सरकार, आप भी क्या बात करते हैं! जब तक इन बाजुओं में दम है तब तक किसकी मजाल है कि आपकी मुखालफत कर सके?' हफीज पहलवान ने अपनी बांहों की पेशियों को फुलाते हुए तन कर कहा। हफीज के इन शब्दों से उसके चेलों की भी त्योरियां चढ़ गईं और एक तो बोल ही

पड़ा, 'हुजूर का नमक खाया है। मौक़ा पड़ने पर जान लड़ा देंगे। फिर यह खिलाई और वरजिश किस दिन काम आयेगी?'

इतने में अन्दर से खाना खाने के लिये छोटी बच्ची की पुकार आई और ठाकुरसिंह ने हफीज से दो घंटे बाद आने को कहकर बैठक समाप्त कर दी। वापस जाते हुए व्यक्तियों में से कुछ तो वास्तव में संतप्त थे, परन्तु कुछ मन ही मन प्रसन्न थे।

सुबह ढोरों को चराने ले जाने वाले ग्वालियों के लड़कों ने भाग कर जब यह सम्वाद गांव में सुनाया कि जमींदार के लठैत जानवरों को नहीं चरने देते और सारे जानवर वापस लौटे आ रहे हैं, तो गांव भर में एक सनसनी-सी दौड़ गई। जमींदारी खतम होने की सूचना से लोगों के हौसले बढ़े हुए थे। इसलिये जमींदार की इस नई हरकत से उनका रोष और भी भड़क उठा। सब से अधिक उत्तेजना भूखे ढोरों के अपने अपने खूंटों पर खड़े होकर रंभाने से हुई। तो क्या सारी गाय-भैंसें भूखी मरेंगी?—सारे गांव के सामने यही एक प्रश्न था।

'गऊ माता के भूखों मरने से लगा हुआ पाप सात जन्म तक नहीं छूटेगा।'

'ऐसे घर से कब तक खिलायेंगे?'

'जान निकल जाय, पर गऊ माता को भूखों नहीं मरने देंगे।'

'ये जुल्म-पर-जुल्म अब नहीं सहेंगे।'

'बाप-दादा के वक्त से सारे जानवर चरते आये हैं, सो अब क्यों नहीं चरेंगे?'

'ऐसे जुल्म से तो जमींदारी कल जाती होगी तो आज ही मिट जायेगी।'

'गऊ माता के श्राप से रावण तक भस्म हो गया जिसकी सोने की लंका थी। इनकी तो मिट्टी की ही गढ़ी है।'

सारे दिन समस्त गांव में इसी बात की चर्चा होती रही, जैसे बन्द स्थान में ध्वनि सब ओर से टकरा कर एक ही प्रतिध्वनि करती है। चौपाल में, नौहरे में, हार में, हाट में, पनघट पर और नहची पर केवल एक ही बात पर विवाद हो रहा था कि अब क्या किया जाये, प्रत्येक व्यक्ति कुछ न कुछ करने के पक्ष में था। परन्तु क्या किया जाये, इस पर मतैक्य न हो पाता था। कार्यवश शहर गये हुए लोग भी दोपहर के बाद गांव लौटने लगे और उन्होंने भी इस दुःसम्वाद को सुना। शाम होते होते मन्दिर के चबूतरे पर गांव वाले इकट्ठे होने लगे। यद्यपि किसी ने भी डुग्गी नहीं पिटवाई थी कि मन्दिर के चबूतरे पर सभा होगी, परन्तु कुछ देर में ही चबूतरे पर एकत्र हुई भीड़ ने सभा का रूप धारण कर लिया और भीड़ निरन्तर बढ़ती ही गई। आज तक चबूतरे पर ऐसी भीड़ इकट्ठी नहीं हुई थी; उस साल भी नहीं जब गांव में पहली बार परदे वाला नाटक हुआ था। चबूतरे की भीड़ दगरे तक पहुंच गई थी। ऐसा लगता था कि गांव का कोई भी व्यक्ति घर पर नहीं रहा है, सब-के-सब यहीं आकर इकट्ठे हो गये हैं। परन्तु इस सभा में बोलने वाले अधिक और सुनने वाले कम थे। प्रत्येक व्यक्ति कुछ-न-कुछ कह रहा था, जिससे यह भीड़ हाट की भीड़ के समान मालूम हो रही थी।

परन्तु जब नारायन ने ज़ोर से बोलना आरम्भ किया तो अधिकांश लोग चुप हो गये, क्योंकि नरायन गांव भर में सब से ज़्यादा पढ़ा लिखा आदमी समझा जाता था। वही तो एक व्यक्ति था जो सारे अखबार को पूरी तरह समझ सकता था। नरायन ने कहना शुरू किया, 'इनके नीचे से जब धरती खिसकने लगी है तो यह ज्यादा-से-ज्यादा धरती पर क़ब्ज़ा

जमा लेना चाहते हैं। लेकिन ऐसे समय में हमको अपने अधिकारों को नहीं छोड़ना चाहिए। जानवर अगर पड़ती ज़मीन में नहीं चरेंगे तो कहां चरेंगे ? दूर दूर तक कहीं भी तो चरने की जगह नहीं है...'

'सच कहते हो, भैया। जो गरदन नवा दी तो मूँड़ ही कट जायेगा।'

'गऊ माता के मरने से पहले हम मर जायेंगे।'

'लड़कों को देखकर डरा लिया होगा। जानवर नहीं चरेंगे—कोई मज़ाक हो रहा है ? अब देखें कल किसकी भूछों में बाल हैं जो जानवरों को चरने से रोके।' वातावरण गम्भीर होता जा रहा था। अन्त में बिना किसी प्रस्ताव को पेश किए ही यह निर्णय हो गया कि अगले दिन सब जानवर चरने जायेंगे और जो कोई बाधा डालेगा उसका लट्ठों से सिर फोड़ दिया जायेगा। युवकों और बालकों के मन उत्साह से भर गये और वृद्धों के एक अज्ञात आशंका से। परन्तु गऊ-माता को भूखों कैसे मरने दिया जाय—इस प्रश्न के आते ही उनके मुंह पर ताला पड़ जाता था।

भोर होते ही गांव वालों ने पूरब दिशा में लाल-लाल आग के गोले के सदृश सूरज को गांव पर आग फेंकते हुए देखा। कुछ लोगों ने सोचा कि आज गांव में अवश्य आग लग जायेगी। बालक उत्साह के कारण बहुत तड़के ही उठ गये थे। प्रत्येक अपनी अपनी लाठी को झुकाझुका कर उसकी मज़बूती को जांच रहा था। ये लोग आज उस शक्ति से भी भय नहीं मान रहे थे जिसके सामने वे हमेशा से दुम हिलाते आये थे। न जाने इतना अपार साहस इनमें कहां से आ गया था कि किसी के मन में तनिक सा भी भय नहीं था।

एक दिन और एक रात के भूखे ढोर खूंटे से छूटते ही कूदते और पूंछ घुमाते हुए अपने चिर परिचित चरागाह की ओर भागने लगे। उनके पीछे पीछे बालकों, युवकों और वृद्धों का दल सिर से ऊंची लाठियां लिए दौड़ पड़ा। यदि एक दो भैंसे होते तब तो देखने वाले यही सोचते कि गांव वाले अपने भैंसों की कुश्ती कराने जा रहे हैं। उत्साह के मारे उनके पैर ज़मीन पर नहीं पड़ रहे थे। ऐसा लगता था कि बहुत देर से बरबस रोकी हुई बानर सेना को राक्षसों का विध्वंस करने के लिए छूट दे दी गई हो।

चरागाह में नियुक्त हफ़ीज़ और उसके दस-बारह चेलों ने दूर से ही इस अपार भीड़ को देखा। कल रात ही वह ठाकुरसिंह को अनेक प्रकार की सांत्वना देकर बेफ़िक्र रहने की सलाह देकर आया था। कहा था, 'भला इन चिकने बदनों को देख कर किस माई के लाल की हिम्मत है कि आगे बढ़े ? गांव में ऐसा कौन है जो यह न जानता हो कि बीस आदमियों तक की लाठियां हफ़ीज़ के बदन को नहीं छू सकतीं ?' इन्हीं लोगों की दिलासा पर तो ज़मींदार ने पुलिस का इन्तज़ाम कराने के विचार को स्थगित कर दिया था।

हफ़ीज़ और उसके साथी बड़े चौकन्ने होकर इस भीड़ को देख रहे थे जो बरसाती नदी की बाढ़ के सदृश अवाध गति से बढ़ी चली आ रही थी और रुकने का नाम न ले रही थी। 'खुदा रे, खुदा ! इस भीड़ का भी कुछ शुमार है, जिसका अगला छोर नहर की पुलिया पर आ पहुंचा है और आखिरी छोर शायद अभी गांव में ही है !'

भीड़ को निकट आया देख हफ़ीज़ और उसके चेलों ने अपने सीने फुलाए और अपने शरीर के समान चिकनी लाठियों को मज़बूती से पकड़ा। उन्होंने सोचा कि शायद अब भी लोग डर कर आगे न बढ़ें। लेकिन लोग न जाने किस नशे

में पागल हो रहे थे कि उनको इन पहलवानों के भीमकाय शरीरों से तनिक भी भय नहीं लग रहा था और वे बराबर आगे बढे आ रहे थे। अपने लक्ष्य को इतने निकट देखकर कर भीड़ के लोगों ने 'बजरंगबली की जय' का भीषण नारा लगाया।

गांव वालों के इस अपरिमित साहस को देखकर हफ़ीज की हिम्मत जवाब दे गई और वह पीछे मुड़ कर इस बुरी तरह से भागा कि फिर हाथ न आया। उसके चेले भी उस्ताद से पीछे न रहे। दुर्ग फ़तह हो गया था। ढोर बड़े आनन्द से खुले मैदान में चर रहे थे और भागने के कारण थके हुए लोग मैदान में बैठ कर सुस्ता रहे थे। इतनी आसान जीत होगी, इसकी किसी को भी आशा नहीं थी। ज़मींदार के पहलवानों की कायरता पर सभी लोग आश्चर्य और टीकाटिप्पणी कर रहे थे।

उधर जब ठाकुरसिंह ने अपने शेरों की बहादुरी का संवाद सुना तो माथा पकड़ लिया; पागल की तरह कमरे के एक सिरे से दूसरे सिरे तक जल्दी जल्दी टहलने लगे। उनके मस्तिष्क में अनेक असंबद्ध विचारों का विस्फोट हो रहा था। सारे गांव में गधों ने किरकिरी करा दी। मैंने पहले ही कहा था कि पुलिस का इन्तज़ाम करवा दूं। लेकिन उस वक्त तो सालों की शेख़ियों के सामने तो रुस्तम भी शरमा रहा था। इस दिन के लिए ही इनको खिलाखिला कर सांड किया था कि मौक़ा पड़ने पर अंग्रेज़ी फौज की तरह दुम दबाकर भाग जायें...

अन्त में उनको एक विचार ने कुछ सन्तोष दिया—ख़ैर, अब जो हुआ, सो हुआ। लेकिन इन लोगों को भी वह मज़ा चखाऊंगा कि सात जन्म तक याद करें। मानों गांव में हम तो कुछ हुए ही नहीं, इन गंवारों का ही है।

तीसरे दिन जब गांव वालों ने चरागाह में पुलिस के सिपाहियों सहित थाने के बड़े दीवान को देखा तो किसी को कुछ विशेष आश्चर्य न हुआ, क्योंकि यह सभी जानते थे कि ज़मींदार चुप बैठ जाने वाला आदमी नहीं है। लेकिन अब गांव वालों में पुलिस का डर तीन साल पहले जैसा नहीं रहा था। कुछ लोग तो पुलिस को भी मारकर भगा देने के पक्ष में थे। परन्तु बड़े बूढ़े और अन्य वोझवज़न के व्यक्ति बेकार की खून-खराबी को इस समय अच्छा नहीं समझते थे। अपने असहिष्णु बच्चों से उनका कहना था, 'जो तुम कह रहे हो वह भी किया जायेगा, लेकिन तभी जब और कोई चारा नहीं रहेगा। क्योंकि जानवर तो भूखे मरने नहीं दिए जायेंगे।'

अन्त में निर्णय हुआ कि नरायन तथा अन्य दो व्यक्तियों को उसी समय नौबतसिंह से मिलना चाहिए क्योंकि वही इस क्षेत्र से असेम्बली के सदस्य हैं। अतएव दोपहर को ही तीनों व्यक्ति नौबतसिंह से मिलने के लिए चल दिये। परन्तु शाम को जब उन्होंने ठाकुर साहब का उत्तर सुनाया तो लोग दांत तले उंगली दबा कर रह गये। नरायन ने कहा, 'ठाकुर साहब तो बोले कि ज़मीन ज़मींदार की है। वह उसका मालिक है, जो चाहे सो करे। तुम अपने जानवरों के लिए कोई दूसरी भूमि देख लो। जब ज़मींदारी ख़तम हो जाये तब जो तुम्हें दिखाई दे सो करना।'

'मैं तो पहले ही जानता था कि इन तिलों में तेल नहीं निकलेगा। नौबतसिंह कोई ज़मींदार से अलग थोड़े ही है।' वाचाल चोखू ने तड़াক से कह दिया।

'वोट लेते वक़्त तो फुसला लिया, और अब तो आंखें दिखायेगा ही। मैं तो तब ही नहीं कहता हूं, पर मेरी सुनता कौन है?' एक वृद्ध ने क्रोध से कांपते हुए कहा।

अन्त में नरायन ने कहा, 'अब बस एक यत्न और रह गया है। उसे और करके देख लिया जाये। उसके बाद जो सब पंचों की सलाह होगी वही किया जायेगा।'

नरायन की बात समाप्त होने से पूर्व ही चोखू ने पूछा, 'अब क्या कहीं और से ललकार खाने की मन में है, भैया ?

'नहीं, चोखू, पहले से ही ऐसा सोचना ठीक नहीं है। मैं समझता हूं कि एक बार माल मन्त्री से मिल कर और देख लिया जाये। वह आजकल दौरे पर हैं और निकट ही हैं, इसलिये दूर भी नहीं जाना पड़ेगा और ज्यादा समय भी नहीं बिगड़ेगा। उनका उत्तर पाने के बाद ही कोई कदम उठाना ठीक होगा।'

'मुझे तो कुछ आशा है नहीं,' चोखू ने सिर हिला कर नकारात्मक भाव दर्शाते हुए कहा।

'तुम भूल करते हो, चोखू। हमको जहां तक हो सके सीधी राह नहीं छोड़नी चाहिये।'

अन्त में नरायन की बात मान ली गई, क्योंकि एक-दो दिन और रुक जाने में कोई हर्ज नहीं था। इन दो दिनों में नरायन माल मन्त्री से मिल कर उनकी सम्मति जानने की कोशिश करेगा। ढोरों को जहां दो दिन से खिला रहे हैं वहां दो दिन और भी खिलाया जा सकता है।

दूसरे दिन सुबह नरायन गांव से चल दिया। उसके हृदय की विचित्र दशा थी। उसे यह आशङ्का बार बार परेशान कर रही थी कि कहीं झगड़ा न हो जावे। लोगों को अधिक दिन तक नहीं बहकाया जा सकता—इसे वह अच्छी तरह से समझता था। लेकिन साथ ही उसका मन यह मानने के लिये भी तैयार न होता था कि सरकार जमींदार की इस ज्यादती के विरोध में कान भी नहीं खुटकायेगी।

नरायन को गांव से गये अधिक देर न हुई थी कि गांव वालों ने उसके लौटने की प्रतीक्षा करनी भी आरम्भ कर दी। गांव वालों को घर में बँधे चौपायों को खिलाने के साथ साथ चरागाह में पड़े दोपायों को भी खिलाना भारी हो रहा था। गांव की स्त्रियां इन नासपीटे सिपाहियों को रोज ही पचासों गालियां दे लेती थीं। लड़कों का रक्त उबल-उबल कर रह जाता था। लेकिन करें क्या ? लेकिन धुआं भीतर-ही-भीतर घुट रहा था।

राम-राम करके दो दिन समाप्त हुए, लेकिन गांव वालों को नरायन के दर्शन न हुए। उनकी विकलता का ठिकाना न था। शायद ब्रज के लोगों ने कृष्ण के मथुरा से लौटने की इतनी अधीरता से प्रतीक्षा न की होगी जितनी कि गांव वालों ने नरायन के लौटने की।

तीसरे दिन चढ़े दिन नरायन ने गांव में प्रवेश किया। उसके मुख पर प्रातःकालीन सूर्य की भांति मुसकान खिली हुई थी, जिसे देखकर हर कोई समझ सकता था कि उसे सफलता प्राप्त हुई है। गांव में पहुंचते-पहुंचते एक बड़ी भीड़ ने नरायन को घेर लिया। सब परिणाम जानने के लिये उत्सुक थे। नरायन उनको सारी बातें बता रहा था, परन्तु जो भी व्यक्ति ज़रा देर में पहुंचता वह नरायन को आरम्भ से सारी कथा कहने के लिये मजबूर करता। नरायन विचित्र झंझट में था। उसका घर तक पहुंचना दूभर हो रहा था मानो गाँव का सीधा रास्ता न हुआ हिमालय पहाड़ की चढ़ाई हो गई। नरायन सबको सन्तुष्ट करने की चेष्टा कर रहा था। उसकी कही हुई बातें पल भर में सारे गांव में फैल गईं। शायद रेडियो से भी यह बात इतनी त्वरित गति से न फैल पाती।

नरायन बड़ी मुश्किल से माल मन्त्री से मिला और उनको सारी बातें खोलकर बताईं। माल मन्त्री ने कहा है कि अगले

दिन तक पुलिस हटा ली जायगी। जमींदार किसी पड़ती जमीन पर कब्जा नहीं कर सकता। अन्य गांवों से भी उनको ऐसी ही शिकायतें मिली हैं और इसलिये उन्होंने हुक्म निकाल दिया है कि जब तक जमींदारी खतम करने का कानून बने, तब तक जमींदार ज्यों-के-त्वों रहें। किसी अन्य भूमि पर हाथ पसारने की कोशिश न करें। ऐसी कोशिश गैरकानूनी होगी।

नरायन की बुद्धि को प्रत्येक दाद दे रहा था। अगर नरायन ने यह राय न दी होती तो न जाने क्या प्रलय होती? आज जैसा आनन्द गांव में बिरले ही देखा गया है, क्योंकि आज सदियों में पहली बार गांव वालों ने रावण सदृश शक्तिशाली जमींदार को पछाड़ा था।

शाम का समय था। ठाकुरसिंह अपनी गढ़ी के बाहर वाले चबूतरे पर अकेले ही घूम रहे थे। वह किसी गूढ़ चिन्ता में निमग्न प्रतीत होते थे। 'यह गढ़ी अब बहुत पुरानी हो गई है। इसकी मिट्टी कई जगह से झड़ने लगी है। अब इसको मरम्मत भो कहां तक कराई जाये? हम लोगों को अब शहर वाले बङ्गले में चला जाना चाहिये। कौन जाने यह गढ़ी कब ढह पड़े?'